محرم نمبر ۱۴۲۹ھ جنوری۔فروری ۲۰۰۸ء

ماہنامہ شعاع عمل لکھنؤ

قَالَ اللّٰہُ تَبَارَکَ وَ تَعَالٰی قَدْجَاءَکُمْ مِنَ اللّٰہِ نُوْرٌوَّکِتَابٌ مُبِیْنٌ؀
بیشک اللہ کی طرف سے تمہارے پاس نور آیا ہے اور روشن کتاب

NOOR-E-HIDAYAT FOUNDATION

مؤسسۂ نور ہدایت حسینیۂ غفران مآبؒ لکھنؤ۔۳

R.N.I. No. UPBIL/2004/13526 Postal Regd. No. SSP/LW/NP-75/2005-07

SHUA-E-AMAL

Lucknow

शुआ-ए-अमल

हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका लखनऊ

NOOR-E-HIDAYAT FOUNDATION

Imambara Ghufran Maab, Chowk LUCKNOW-3 (U.P.) INDIA, Phone : 2252230

वर्ष–4

R.N.I. No. UPBIL/2004/13526
Postal Regd No-SSP/LW/NP-75/2005-07

अंक 7–8

माह जनवरी–फरवरी – 2008 लखनऊ

नूर–ए–हिदायत फ़ाउण्डेशन की

हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका

मुहर्रम नम्बर 1429

शुआ-ए-अमल

"लखनऊ"

मुहर्रम नम्बर 1429

संरक्षक

मौलाना सै. कल्बे जवाद नक़वी साहब

सम्पादक

सै. मुस्तफ़ा हुसैन नक़वी 'असीफ़' जायसी

सलाहकारी परिषद

प्रोफेसर अल्लामा सै0 अली मुहम्मद नक़वी, प्रोफेसर सै0 हुसैन कमालुद्दीन अकबर, मु0 र0 आबिद, सैय्यद समीउल हसन वसीम, तज़हीब नगरौरी

वार्षिक – 200 रु

मिलने का पता

क़ीमत – 40 रु

नूर–ए–हिदायत फ़ाउण्डेशन

इमामबाड़ा हज़रत गुफ़रानमआब मौलाना कल्बे हुसैन रोड

चौक लखनऊ – 3 (उ.प्र.) भारत फोन न0 0522–2252230

सै. कल्बे जवाद नक़वी प्रिन्टर, पब्लिशर और प्रोपराइटर ने मासिक शुआ–ए–अमल (उर्दू, हिन्दी) निज़ामी आफ़सेट प्रेस विक्टोरिया स्ट्रीट लखनऊ से छपवाकर आफ़िस नूर–ए–हिदायत फ़ाउण्डेशन इमामबाड़ा गुफ़रानमआब मौलाना कल्बे हुसैन रोड लखनऊ–3 से प्रकाशित किया। सम्पादक : सै0 मुस्तफा हुसैन नक़वी 'असीफ जाएसी'।

फ़ेहरिस्ते मज़ामीन

न0 मज़मून लेखक पेज न0

1– शहादत या कुर्बानी

उमदतुल उलमा मौलाना सैय्यद कल्बे हुसैन साहब क़िब्ला 3

2– इमाम हुसैन (अ0) का सन्देश मानवता के नाम

सय्यिदुल उलमा सैय्यद अली नक़ी नक़वी ताबा सराह 6

3– सलाम

मु0 र0 आबिद 14

3– हुसैन (अ0) के अज़ादारों के नाम

मौलाना सै0 रज़िउद्दीन हैदर साहब 15

4– हुसैन (अ0) और हिन्दुस्तान

सय्यिदुल उलमा सैय्यद अली नक़ी नक़वी ताबा सराह 19

5– हुसैन (अ0) की शहादत की मुख़तसर कहानी

सर जार्ज टामस चीफ़ जस्टिस अवध 24

6– मुख्य समाचार

इदारा 26

शहादत या कुर्बानी

उमदतुल उलमा मौलाना सैय्यद कल्बे हुसैन साहब क़िब्ला
अनुवादक– काज़िम महदी

इस ज़माने से पहले भी शहादत का लफ्ज़ अक्सर इन्सान के लिए इस्तेमाल किया गया है और अब भी इस लफ्ज़ का इस्तेमाल हक़ को देखे बग़ैर आम हो चुका है। ख़ुद अपनी ग़लतकारियों की बदौलत कोई क़त्ल हुआ और दुनिया ने उसको शहीद का लक़ब बड़े शौक़ से अता कर दिया। किसी मामूली बात पर दो आदमियों में झगड़ा हुआ जिसमें कोई एक मर गया और फौरन शहीद बताकर दुनिया के सामने पेश कर दिया गया। यही वजह है कि आज स्ट्राइक के शहीद, पिकटिंग के शहीद, ग़दर के शहीद, ज़मीनदारी के शहीद, इश्क़ व मुहब्बत के शहीद हर गली कूचे में बहुत से नज़र आ रहे हैं जिनकी कोई गिनती नहीं। लेकिन हक़ीक़त यह है कि उनमें से कोई एक भी शहादत के लक़ब का हक़दार नहीं। यह तो कहा जा सकता है कि फलाँ शख़्स ने अपनी कुर्बानी पेश कर दी मगर वह भी सिर्फ उसी वक़्त कि जब कोई शख़्स जानबूझ कर किसी सही ग़रज़ के लिए अपनी जान की कुर्बानी पेश कर दे।

ऐसी कुर्बानियाँ पेश करने वालों में भी यह देख लेना ज़रूरी है कि ग़रज़ क्या थी और सच्चाई थी या नहीं। मगर हर कुर्बानी को शहादत कह देना बिलकुल ग़लत है। शहादत सिर्फ वही है जो ख़ुदा की मर्ज़ी के मुताबिक़ और मज़हब की हद के अन्दर हो। इसी नुक़्त–ए–नज़र से हम सिर्फ उन्हीं को शहीद कह सकते हैं जो रसूल या इमाम की इजाज़त से जिहाद करें या ग़ैबते इमाम में बचाव करने यानी दीन व मज़हब की हिफाज़त या इज़्ज़त व जान की हिफाज़त में ज़ुल्म व सितम सहते हुए क़त्ल हो जाएँ।

यही वजह है कि चाहे तमाम दुनिया की नज़र में शहीदों की गिनती बेपनाह हो जाए मगर हमारी नज़र में शहीदों की तादाद बहुत कम है।

जो असल में शहीद हैं उनमें भी हालात के लेहाज़ से, ग़रज़ के एतबार से, फायदों की बुनियाद पर, शहादत के तरीक़े पर नज़र करके दरजात में बुलन्दी और पस्ती होती है। यक़ीनन वह भी शहीद हैं जो इमाम या रसूल के साथ मैदाने जंग में अकेले आए और क़त्ल हुए और वह भी शहीद हैं जिनको दीन के दुश्मनों ने सिर्फ सच्चे मज़हब से दुश्मनी की वजह से क़त्ल कर दिया या दीवारों में चुन दिया या भूखा प्यासा रखकर मार डाला। शहीद वह भी हैं जो दीन की मदद करने में अचानक क़त्ल कर दिये गये और उनको सोचने समझने का कोई मौक़ा न मिला। मगर उनकी शहादतें इतनी बलन्द न थीं जितनी उन लोगों की शहादत जो मैदान में अकेले न थे बल्कि घर वाले और रिश्तेदार व औलाद सब साथ थे।

पहले उन राहे ख़ुदा के शहीदों ने अपने तमाम रिश्तेदारों की शहादत पेश की। उनकी लाशें उठायीं और उसके बाद ख़ुद ख़ुदा के रास्ते

में अपनी कुर्बानी पेश की। इन लोगों की शहादत अचानक भी न थी। जैसे कोई किसी को गोली मार दे और वह शख़्स क़त्ल हो जाए बल्कि बचाव का रास्ता सामने मौजूद था मगर ख़ुदा की मर्ज़ी पर जान देने वालों ने बचाव पर अपने क़त्ल को आगे रखा।

इन्हीं तमाम वजहों की बुनियाद पर हमारा ईमान है कि आदम (अ0) के वक़्त से लेकर इस वक़्त तक ऐसी कोई शहादत दुनिया का कोई इन्सान पेश नहीं कर सकता जो शहादते हुसैनी के बराबर या उससे बलन्द हो सके और हमको यक़ीन है कि आगे भी दुनिया की आख़री उम्र तक ज़माना कोई ऐसी शहादत न पेश कर सकेगा जो हुसैनी शहादत के मुक़ाबले में आ सके।

ऐसे मरने वालों को तो हम शहीद ही नहीं जानते जो इश्क़ व मुहब्बत के झगड़ों में मारे गये। ज़मीनदारी के सिलसिले में क़त्ल हुए या आपस के ख़ानदानी झगड़ों में हलाक हुए या मुल्क जीतने या हुकूमतें हासिल करने या सियासी इख़्तेलाफात में मार डाले गये। दुनियावी नुक़्त–ए–नज़र से कितने ही ऊँचे दर्जे वाले क्यों न क़रार दे दिये जाएँ मगर शियों का नज़रिया जिस तरह तौहीद में, रिसालत में, इमामत में, दोबारा ज़िन्दा होने में, लीडरी में तमाम दुनिया के नज़रियों से बहुत ज़्यादा पाक व साफ और बेहद बलन्द है उसी तरह शहादत में भी हमारी बलन्द निगाही तक और कोई नहीं पहुँच सकता। ऊपर बताये गये किसी तरह के क़त्ल को हम शहादत कहने पर तैय्यार नहीं बल्कि कुछ हालात में तो हम ऐसे लोगों को मज़हब की निगाह से तारीफ के क़ाबिल भी नहीं कह सकते। मगर पिछले लोगों में जनाबे ज़करिया (अ0), जनाब यहया (अ0) या दूसरे नबी जो शहीद हुए उनको हम यक़ीनन क़ाबिले अज़मत समझते हैं मगर उनकी शहादत भी हुसैनी शहादत से टक्कर नहीं ले सकती क्योंकि न उन शहीदों के सामने बचाव की सूरत थी न घर वाले थे, न वह हालात व माहौल था जिसने हुसैनी शहादत को बलन्द कर दिया। इसी तरह बद्र व ओहद के शहीद, ख़ैबर व हुनैन या जंगे जमल व सिफ़्फ़ीन में जो रसूल (स0) और अली (अ0) की इजाज़त से मैदाने जंग में आए, शहीद हैं और बहुत बलन्द दर्जे वाले हैं लेकिन आशूर के शहीद कुछ और ही हैं। यक़ीनन तमाम मुसलमानों के नज़दीक इसमें कोई इन्कार नहीं कि जनाब हमज़ा सैय्यदुश्शोहदा थे और ख़ुद अमीरुलमोमिनीन ने भी आपको सैय्यदुश्शोहदा फ़रमाया है मगर जब इमाम हुसैन (अ0) के मुक़ाबले में जनाब हमज़ा को लाया जाए तो शहीदों के सरदार का ताज जनाब हमज़ा ख़ुशी से अपने इस नवासे की ख़िदमत में पेश कर देंगे कि सबके मुक़ाबले में मैं सैय्यदुश्शोहदा लेकिन ऐ हुसैन (अ0)! आपके मुक़ाबले में तो मैं सर झुका के क़बूल करने को तैय्यार कि आप मेरे भी सरदार हैं। यक़ीनन आपको ख़ुदा ने, रसूल ने, तमाम ईमान वालों ने सैय्यदुश्शोहदा क़रार दे दिया यानी जिस तरह बनीइस्राईल के लिए एक जगह नहीं क़ुर्आन ने कई जगहों पर कहा कि अल्लाह ने बनीइस्राईल को तमाम दुनिया पर फज़ीलत दी मगर इसके माने यह नहीं कि तमाम बनीइस्राईल उम्मते मरहूमा मुहम्मदिया से भी बेहतर बल्कि हमारे रसूल और इमामों से भी अफज़ल, बल्कि अहमियत का मक़सद यक़ीनन यह था कि अपने ज़माने वालों से बेहतर। इसी तरह हमज़ा के सैय्यदुश्शोहदा होने के यह माने हरगिज़ नहीं

कि अपने बाद वालों में भी सबके सरदार बल्कि सिर्फ अपने ज़माने वालों के सरदार। मगर जब दौरे जनाब हमज़ा गुज़र गया और अमीरुलमोमिनीन और इमाम हसन (अ0) का दौर आया तो हमज़ा उन लोगों के सरदार हरगिज़ न थे और इमाम हुसैन (अ0) की शहादत तो इतनी बलन्द थी कि जहाँ तक जनाब हमज़ा की निगाह की पहुँच ही न थी।

इसलिए तमाम शहीदों से बेहतर कि शहादत की ग़रज़ (यानी दीन की हिफाज़त) बेहद बलन्द थी, इसलिए तमाम शहीदों से अफज़ल कि जो फ़ायदे इस शहादत से हासिल हुए वह किसी एक शहीद की शहादत से हासिल न हुए, इसलिए तमाम शहीदों से अफ़ज़ल कि बचाव का रास्ता (यानी बैअत) खुला हुआ था जिसके बाद जान बच सकती थी बल्कि अगर 'अल्लाह की पनाह' इमाम हुसैन (अ0) यज़ीद के कामों में रवादारी इख़्तियार कर लेते तो यक़ीनन दुनियावी ज़िन्दगी बड़ी राहत व आराम और ऐश से गुज़रती बल्कि अगर यज़ीद के साथ हम प्याला व हम निवाला न भी होते सिर्फ बैअत करके यह वक़्त टाल देते और मुनासिब मौक़ा और महल पर दोबारा मुक़ाबला करते जैसा कि इस ज़माने का तरीक़ा और सियासत यही है तो भी शहादत टल सकती थी मगर बचाव की सूरत मौजूद होने के बाद भी शहादत को इख़्तियार फ़रमाना वह बलन्द मन्ज़िल थी जहाँ दूसरों की पहुँच न हो सकी। फिर यह सूरत भी न थी कि सोचने समझने और जानबूझ कर शहादत मन्जूर करने या ना करने का मौक़ा न मिला हो और ग़फ़लत में किसी ने हमला कर दिया हो क्योंकि मुहर्रम के दस दिन में हर पहलू पर काफ़ी ग़ौर कर लेने के लिए काफी वक़्त था इसलिए उन तमाम शहीदों की कोई हस्ती इमाम हुसैन (अ0) के मुक़ाबले में नहीं रहती जिनको किसी ने अचानक गोली मार दी हो। इसी के साथ बड़े सब्र व सुकून व इत्मिनान के साथ पहले अपने दोस्तों को फिर अपनी रिश्तेदारों को कुर्बानी के मैदान में पेश कर देना जंग जीतने वाली सूरत को छोड़कर एक–एक को मैदाने जंग में भेजना, और इसी अन्दाज़ से तमाम रिश्तेदार, क़रीबी, भाँजों, भतीजों, भाईयों, नौजवान बेटों के बाद छः माह के बच्चे को गोद में लेकर सब्र व सुकून का मन्ज़र पेश करना और जब कोई बाक़ी न रहा तो औरतों, बच्चों, बेटों, बेटियों को खुदा की मर्ज़ी पर राज़ी रहने की तालीम देके रुख़सत करना और अकेले मैदाने जंग में आकर ताक़त के हिसाब से ज़ाहिरी जिहाद करके शहादत की मन्ज़िलों में सर झुका देना यही वह बुलन्दतरीन मन्ज़र थे जिनको न किसी आँख ने देखा और न किसी कान ने सुना इसलिए हम कहते हैं और एलानिया तौर पर कहते हैं कि हुसैन की शहादत की न कोई मिसाल पूरी दुनिया में नज़र आयी और न क़यामत तक नज़र आयगी। हमारी नज़र में यह कहना हुसैन की शहादत की बड़ी से बड़ी नाक़द्री है कि ''इस्लाम ज़िन्दा होता है हर कर्बला के बाद'' ख़ुदा की क़सम आदम के वक़्त से 61 हि0 तक न पहले कोई कर्बला बनी और न आज तक कोई कर्बला बन सकी और न दुनिया की उम्र की आख़री मन्ज़िल तक कोई कर्बला बनेगी इसलिए हुसैनी शायर फज़ल का यह कहना बिलकुल ठीक है कि ''इस्लाम ज़िन्दा होता है बस कर्बला के बाद''

□□□

इमाम हुसैन (अ०) का सन्देश मानवता के नाम

सैय्यदुल उलमा सैय्यद अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
अनुवादक– डाक्टर मौलाना सैय्यद कल्बे सादिक़ साहब क़िब्ला

हुसैन का सन्देश मानवता के नाम

ध्यान से सुनो! करबला के निर्दोष शहीद की आवाज़ विश्व के कोने–कोने में गूंज रही है।

ऐ मेरे अल्लाह की विस्तृत पृथ्वी के बसने वालों! ऐ इस लम्बी चौड़ी धरती के आबाद करने वालो! मैं तुम्हें तुम्हारे विभिन्न संप्रदायों के नामों से नहीं पुकारता इस लिये कि मेरी विस्तृत मानवता तथा महान प्रगड़िता के साथ सहानुभूति में तुम्हारे आपसी मत भेद की खींचातानी उसी प्रकार मिट जाती है जैसे महान समुद्र के हलन्त स्तर में नदियों की विकलता और झरनों का गुलगपाड़ा । मैं तुम सब को निमंत्रण देता हूं कि पता चलाओ कि मैं कौन हूँ? किस उद्देश्य के लिये उठा तथा मैं ने उसके लिये क्या किया?

सुनों! मैं कौन हूँ।

मैं अरब देश के सब से अधिक प्रतिष्ठित परिवार, बनी हाशिम का अपने समय में महान पूजनीय व्यक्ति तथा इस परिवार के सब से महान पुरूष मुहम्मद मुस्तफ़ा का अपने ज़माने में अकेला ही स्मारक था। तुम ने इस्लामी उपदेश को ध्यान से कभी न देखा हो, परन्तु इस्लाम धर्म का नाम अवश्य सुना होगा। अल्लाह का यह संदेश मेरे नाना मुहम्मद मुस्तफ़ा द्वारा संसार को पहुँचा था। इस संदेश द्वारा पूर्ण संसार को एक बलवान तथा शक्ति–सम्पन्न अल्लाह के सम्मुख सर झुकाने का उपदेश दिया गया था और अपने हाथ की बनाई हुई मूर्तियों की पूजा को मिटाया गया था। याद रखो ! यह मूर्तियाँ सोने चांदी या पत्थर की ही होना आवश्यक नहीं ; बल्कि हड्डियों तथा मांस से बना हुआ मनुष्य भी कभी मूर्ति का रूप ग्रहण कर लेता है जब वह अल्लाह के संदेश और उसकी भक्ति के सामने, संसार पर अपनी शक्ति तथा सामर्थ्य की धाक बिठाना चाहता हो और संसार को अपने सामने सिर झुकानेपर विवश कर दे।

मेरे नाना ने इस मार्ग में बड़े कष्ट उठाए अरब देश के लोग तथा स्वयं उनके नातेदार, उनके विरोधी बन गए। लोग उन्हें पत्थर मारते थे, घायल करते थे,गलियों तथा मार्गों से उनके सिर पर कूड़ा–करकट डालते थे और विभिन्न प्रकार से दु;ख पहुंचाते थे पर मेरे दादा अबूतालिब ने जो इस पवित्र ''रसूल''(अल्लाह–दूत) के चचा थे, अपने भतीजे की हर अवसर पर सहायता की तथा उनको शत्रुओं के भय से सुरक्षित रखा। मेरे पिता ''हज़रत अली'' अभी अल्प–वयस्क ही थे कि उन्हों ने अपने बड़े भाई मुहम्मद साहब के साथ विश्वास–पात्रता का कर्तव्य–पालन आरम्भ कर दिया। मेरे नाना मुहम्मद मुस्तफ़ा को 'इस्लाम' के प्रसार के लिये अपनी मातृ–भूमि ''मक्का'' को छोड़ देने पर तत्पर होना पड़ा। इस अवसर पर शत्रुओं को यह मालूम हुआ तो वे आप की हत्या पर तैयार हो गये तथा इसी विचार से उनके निवास–स्थान को घेर लिया। यह एक ज्ञातव्य घटना है कि जब घर को शत्रु घेरे हुए थे तथा मुहम्मद साहब शत्रुओं की दृष्टि से बचते हुए

''मक्का'' से प्रस्थान कर रहे थे तो अपने चचेरे भाई, मेरे पिता 'अली' को अपने बिछौने पर चादर उढाकर सुलागये थे। और वह शत्रुओं की खिंची हुई तलवारों के बीच अपने प्राण को मुहम्मद साहब के लिये ढाल बनाए हुए उनके बिछौने पर विश्राम कर रहे थे।

'मदीने' पहुँचने के बाद भी मेरे नाना को विरोधियों ने शाँतिपूण जीवन बिताने न दिया। उनपर अनेक बार बड़ी बड़ी सेनाओं के साथ चढ़ाई की। आप ने इस सदर्भ में, बद्र, उहद, खन्दक, खैबर तथा हुनैन का नाम अवश्य सुना होगा। यह सब बड़े बड़े युद्ध वे थे जिन में विरोधी शक्तियों ने एका करके मेरे नाना के मिशन को छिन्न–भिन्न कर देना चाहा था, पर यह सत्य की शक्ति और मेरे पिता 'अली' की तलवार थी जिसने इन अवसरों पर मुहम्मद साहब को विजयी बनाया। जब तक संसार के इतिहास में इस्लाम का नाम अवशिष्ट है, मेरे नाना 'मुहम्मद' तथा पिता 'अली' की याद स्थापित रहेगी।

संसार में मानवता के जितने गुण हैं वे सब मेरे नाना ने अरब देश में अपने उपदेश द्वारा फैलाए, आप को ज्ञात होगा कि संसार में सदा से शक्तिशाली मनुष्य दुर्बलों को अपमान की दृष्टि से देखते रहे, तथा मानव सम्बन्धी सर्वजनिक अधिकारों में भी बटवारा कर दिया परन्तु मेरे नाना ने समानता और बराबरी की एक शक्तिशाली आवाज़ उठााई, तथा व्यवहारिक रूप से हर संसार के स्तर को ऊंचा किया तुम्हें मालूम होगा कि मेरे नाना की मस्जिद में अज़ान देने वाला एक काले रंग का हब्शी, ''बिलाल'' था, जिसका वह इतना आदर करते थे जितने बड़े बड़े प्रतिष्ठित परिवारों के मनुष्यों का भी न करते होंगे।

मेरे नाना की एकलौती पुत्री,मेरी माता फ़ातिमा थीं जिन से वह बहुत अधिक प्रेम रखते थे वह उनके पास जाती थीं तो उनके सम्मान में खड़े हो जाते थे। उनका विवाह मुहम्मद साहब ने अपने चचरे भाई अली के साथ किया परन्तु साँसारिक दृष्टिकोण से मेरी माता जी की यह दुर्दशा थी कि एक समय तक उनके पास घर के काम–काज के लिये कोई नौकरानी तक न थी। स्वंय चक्की चलाती थीं, स्वयं चरखा कातती थीं तथा स्वयं घर में झाड़ू लगाती थीं मेरे नाना ने अपनी इस प्रिय पुत्री को एक दासी दी थी, जिसका नाम फ़िज़्ज़ा था, तो यह आदेश दे दिया कि सम्पूर्ण कार्य बराबर फ़िज़्ज़ा ही से न लेना बल्कि एक दिन घर का काम–काज तुम करना और एक दिन फ़िज़्ज़ा से काम लेना। यह समानता का वह उपदेश था जिसे संसार को स्मरण रखना चाहिए।

अपने माता पिता के हम दोनों भाई हसन मुजतबा और मैं, बड़े प्यारे पुत्र थे। हमारे नाना हमसे इतना प्रेम रखते थे कि हमसे बालकों की भांति खेलते थे तथा मुसलमानों से हमारा परिचय देते थे कि देखो! ''ये दोनों मेरे नवासे मुझे बहुत प्रिय हैं. तुम सब भी इनका ध्यान रखना। वह कभी हमारा रोना सहन नहीं करते थे और यदि उस बाल–अवस्था में कभी हम नमाज़ के सिजदे की दशा में भी उनकी पीठ पर आकर बैठ जाते थे तो हम को उस समय तक न उतारते थे जब तक हम स्वंय न उतर जायें उन्होंने हम दोनो के सम्बंध में यह भी कहा कि ''हसन , और हुसैन स्वर्गवासियों के सरदार हैं'' कभी हमें फूलों का गुलदस्ता कहा तथा कभी सर्वश्रेष्ठ आकाश का आभूषण। हमें अपने नाना के समय जो प्रसन्नता तथा संतोष प्राप्त था वह फिर कभी स्वप्न में भी दिखाई न पड़ा।

हमारी पहली आपत्ति

हम दोनों भाई प्रेम और खुशी के वातावरण

में जीवन बिता रहे थे कि सहसा हमारे नाना मुहम्मद साहब रोगी हो गये। मेरी अवस्था यद्यपि उस समय कम थी परन्तु मैं अनुमान अवश्य कर सकता था कि उनकी बीमारी के समय से ही हमारा वातावरण अस्वादिष्ट होना आरम्भ हो गया। हमारे नाना निरंतर अपनी ज़बान से अपने घरवालों के लिए सम्पूर्ण मुसलमानों को आदेश देते थे। उन्होने अपनी बीमारी के समय यह चाहा कि इस वसीयत को दस्तावेज़ के रूप में पूरा कर दें किन्तु लोगों ने इस अभिप्राय में सफ़ल न होने दिया तथा दस्तावेज़ लिखने न दिया हम को उस समय यही घटना यह समझा देने के लिए पर्याप्त थी कि वातावरण क्या है तथा परिस्थिति कया होने वाली है।

मेरे नाना की मृत्यु के पश्चात्

मेरे नाना मुहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् मेरे पिता जी ''अली'' तथा माता जी ''फातिमा'' को बड़े कष्ट उठाने पड़े यहां तक कि मेरी माता जी निरंतर एक पद्य पढ़ा करती थीं जिसका अनुवाद यह है,

''मेरे ऊपर इतनी विपत्तियां पड़ीं कि यदि वे दिनों पर पड़ती तो वे अंधेरी रात बन जाते''।

अन्त में मेरी माता जी इसी शोक, दुःख तथा निराशा की अवस्था में स्वर्ग सिधारीं, यह मेरे लिए दूसरी आपत्ति थी। मैरे पिता जी की ओर साधारण जनता का जितना ध्यान मुहम्मद साहब की पुत्री फ़ातिमा के जीवन में था, बाद को उतना भी अवशिष्ट नहीं रहा। यदि मेरे पिता जी उस समय उस इस्लाम धर्म के लाभ को सामने न रखते जिसके लिए वह पैग़म्बर साहब के जीवन में अपना खून–पसीना एक कर चुके थे तो उस समय मुसलमानों में एक महान गृह कलह आरम्भ हो जाता। परन्तु मेरे पिताजी ने सांसारिक शासन के प्रति सदा बे परवाही तथा निशचिन्ता से काम लिया। उन्होंने अपने अधिकारों के केवल ज़बान से बयान कर देने को पर्याप्त समझा तथा व्यवहारिक रूप से विरोध न करके एकान्तीय जीवन स्वीकार किया और इस प्रकार इस्लाम को नष्ट हो जाने से बचा लिया यह मेरे लिये सांसारिक शासन से बेपरवाही का एक महान उपदेश था।

तीन भूत्व इसी प्रकार बीत गये चौथी बार लोगों ने मेरे पिता ''अली'' को विवश किया कि वह शासन का उत्तरदायित्व स्वीकार करें। मैने देखा। कि वह इस बात के होते हुये भी कि इससे पहले अपने अधिकारों की निरंतर घोषणा करते इस समय लोगों के आग्रह के बाद भी निरंतर इनकार कर रहे थे तथा किसी प्रकार तत्पर न होते थे। इसका कारण अवश्य यह था कि उस समय मुसलमानों का स्वभाव बिगड़ चुका था तथा ''ख़िलाफ़त'' (पैगम्बर साहब की उत्तराधिकारिता) के विषय में उनका दृष्टिकोण ही पलट चुका था। खिलाफ़त पूर्ण रूप से सांसारिक राज्य तथा शासन के साँचे में ढल गयी थी और सम्राटों जैसे लक्षण उसमें प्रकट हो गये थे। वह बात किसी प्रकार उस बेबनावटी, सिधाई तथा मन की स्वच्छता के अनुकूल न थी जिसे संसार में मेरे नाना ने फैलाया था तथा जिस पर मेरे पिता जमे हुये थे। यही कारण था कि मैं ने देखा, कि जब निरंतर तथा असीम आग्रह पर मेरे पिता जी राज्य सिन्हासन पर बिराजमान हुये तो संसार उनके आज्ञा पालन तथा उनकी शिक्षा ग्रहण करने के योग्य न ठहरा उनके विरोध का अन्धड़ उठ खड़ा हुआ।'जमल' 'सिफ़फ़ीन तथा 'नहरवान' के युद्ध हुए, और अन्त में मस्जिद के भीतर उनके सिर पर बिष में बुझाई तलवार लगाकर उनका जीवन

समाप्त कर दिया गया। यह बहुत कडुआ अनुभव था जो मुझको अवलोकन रूप में सांसारिक शासन तथा राज्य से अप्रसन्न बना देने के लिये पर्याप्त था।

शाम (सीरिया) के शासन पर मेरे ''बनी–हाशिम'' परिवार के शत्रु–परिवार, ''बनीउमय्या'' का क़ब्ज़ा था। इसी परिवार का एक सदस्य ''मुआविया (पुत्र) अबु–सुफ़यान''''दमिशक'' के सिन्हासन पर राजा बना बैठा था। इस ''मुआविया'' की माता ''हिन्दा'' वह थी जिस ने पैग़म्बर साहब के चचा ''हमज़ा'' का शव चिरवाया था तथा उनका जिगर मुंह में लेकर चबाना चाहा था। मेरे पिता जी से भी मुआविया ने युद्ध किया था। अब पिता जी के देहान्त के पश्चात् मेरे बड़े भाई हसन संसार के सरदार हुए। हसन ने देखा कि असीम दंगे फ़साद के बाद भी स्थिति सुधरने की कोई आशा नहीं इस लिए उन्होंने कुछ विशेष शर्तों के साथ ''शाम'' के राजा से सुलह कर लेना स्वीकार कर लिया।

सुलह नामे की इन शर्तों में एक महत्व पूर्ण शर्त यह भी थी कि ''मुआविया'' को अपने पश्चात किसी अन्य व्यक्ति को 'ख़िलाफत'' के लिए निर्वाचित करने का अधिकार न होगा, बल्कि ''खिलाफ़त'' बनी–हाशिम की ओर पलट जायेगी।

इस सुलहनामे के साथ मैं भी पूर्ण रूप से सहमत था। हमारे नाना का उपदेश यही था कि जब तक मिथ्या का उत्तर–दायित्व अपने ऊपर न आता हो उस समय तक सुलह को युद्ध से प्रधानता देना, तथा रवादारी से काम लेना उचित है। मेरे नाना ने ''हुदैबिया'' में ''कुरैश'' के नास्तिकों के साथ तथा मेरे पिता ने''सिफ़फीन'' में शाम वालों के साथ इसी सिद्धांत पर सुलह की थी। यही सिद्धांत भाई हसन के सामने था। किन्तु मैं ने देखा! कि इसके बाद भी मेरे भाई हसन को संतोष का जीवन बिताने न दिया गया तथा अन्त में एक गुप्त षडयन्त्र से विष द्वारा उनका जीवन समाप्त कर दिया गया। परन्तु इसके बाद भी जब तक कोई स्पष्ट कारण न होता मुझे कोई कद़म उठाने का अवसर न था इस लिये इसके बाद दस वर्ष तक मैं बिलकुल शान्त रहा। तुम समझ सकते हो कि युवावस्था जो साधारण रूप के जोश तथा मनोवेग का समय होता है, जिसमें अधिक्तर कभी अस्थाई आवेशों के अन्तर्गत प्रकट होते हैं यह पूर्ण काल मेरे उसी ही मौन तथा सहनशील वातावरण में समाप्त हुआ जो मेरे पिता ''अली ''को एकान्त काल में प्राप्त था।

मेरा स्वभाव धैर्य, सहनशीलता तथा असह्य कठनाइयों को सहन करने में पूर्ण रूप से दृढ़ हो गया था। यदि 'हसन' की सुलह मेरे स्वभाव के विपरीत होती अथवा उनके दबाव से मैं ने इस स्थिति को सहन किया होता तो उनकी मृत्यु के पश्चात् पर्याप्त अवसर था कि मैं परिस्थिति को पलट देता, किन्तु मैंने ऐसा नहीं किया तथा दस वर्ष का लम्बा समय हसन के बाद भी बिता दिया। अब तुम समझ सकते हो कि मेरी आयु लगभग साठ वर्ष की हो चुकी थी तथा यह समय किसी उमंग, आवेश, मनोवेग या वलवले का नहीं होता। न तुमको यह विचार करने का अधिकार है कि मुझे राज्य तथा शासन की कोई मनोकामना थी, जबकि मेरे भूत–पूर्व वृतान्त तथा मेरा आत्म–सम्बन्धी अवलोकन इसके विरूद्ध साक्षी दे रहे हों

फिर क्या था?

शाम के राजा ''मुआविया'' ने उन तमाम शर्तों का उल्लंघन किया जो उस सुलहनामे में निश्चित हुई थीं मेरे पिता के मित्रों की चुन–चुन कर हत्या कर दी गई। यह परिस्थिति स्वयं

असहनीय थी मेरे पिता कह चुके थे कि ''अत्याचार को उस समय तक सहन कर सकता हूँ जब तक उसका केवल मेरे शरीर से सम्बन्ध रहे और अन्य मुसलमानों से उसका कोई सम्बन्ध न हो'' परन्तु अब यह स्थिति थी कि हमारा नाम लेने वाले दूसरे मुसलमान कठिनाइयों में गिरफ़तार किये जा रहे थे। ''हजर–बिन अदि और उनके साथी ''दमिश्क़'' में फाँसी पर लटकाये गये, ''उमर–बिन–अल–हुम किल–ख़ुज़ाई'' का सर काटकर बरछी पर चढ़ाया गया यह हालात मेरे लिए अवश्य असहनीय थे, परन्तु इतनी भारी घटनाओं के बाद भी मैंने केवल प्रोटेस्ट को पर्याप्त समझा तथा '' मुआविया'' को पत्र लिखा कि शायद इतने से ही स्थिति सुधर जाय। यह इसलिए था कि तुम मुझ पर जल्दबाजी का अपराध न लगाओ। मुझे समाचार पहुंच रहे थे कि मेरे पिता को मिंबरों (मस्जिद में व्याख्यान देने के चबूतरों) पर गालियां दी जाती हैं इसके लिए हमने और हमारे भाई ने इतने ही को पर्याप्त समझा कि हमारे सामने ऐसा नहीं होता। इससे बढ़ कर सुलह पसन्दी तथा रवादारी और क्या हो सकती थी? मुझे यह भी मालूम हुआ कि शास्त्र में काट छांट आरम्भ हो गयी है तथा धर्म द्वारा निश्चित रीतियों को तोड़ा जा रहा है, जैसे कि इस्लामी राज्य में शराब का आयात आज़ादी से होने लगा और इस पर कोई रोकता है तो परवाह नहीं की जाती।

सम्भव था कि इस्लाम के उन बड़े बड़े आदेशों के आज्ञा पालन को ग़नीमत जानकर जो, दिखाने के लिए आवश्यक समझे जाते थे, इन सूतों को एका एकी की अपराध समझकर के चुप रहा जाता, किन्तु ''मुआविया'' ने सबसे अन्त में अपने पुत्र ''याजीद'' को ख़िलाफत' देना आवश्यक समझा तथा सारे मुसलमानों से उसकी बैअत (शासक मनवाने के लिए लोगों से प्रतिज्ञा ली गयी।)

यजीद कौन था?

''यजीद'' ''मुआविया'' का पुत्र था जो एक जंगली अरब स्त्री से पैदा हुआ था। वह परले दरजे का दुष्टाचारी बदचलन तथा एक पापी मनुष्य था वह कभी नमाज़ न पढता था खुल्लम–खुल्ला शराब पीता था व्यभिचार तथा हुड़दंगे में सदा जुटा रहता था। और हद यह है कि मनोकामना पूर्ति के लिये अपनी मां और बहिन को भी न छोड़ता था। वह पैग़म्बर साहब का ''खलीफा'' बनकर शासन पर अधिकार कर लेता तो मुसलमानों में इस्लामी धर्म–शास्त्र का कोई आदर और प्रतिष्ठा बाक़ी नहीं रह सकती थी। ऐसे व्यक्ति का ''खिलाफ़त सिन्हासन'' पर लाया जाना स्वयं असहनीय था इस पर यह कि मुझ पर उसकी बैअत के लिए जोर दिया जा रहा था। इसका अर्थ यह है कि मैं स्वयं अपनी ओर से उसको पैग़म्बर साहब का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लूँ और इस प्रकार उसके सम्पूर्ण दुराचारों के उचित होने का उत्तरदायित्व ले लूँ।

मैंने इसको पसन्द नहीं किया इस विषय में तुम भूतपूर्व घटनाओं से मेरी स्थिति का अनुमान कर सकते हो। मैं, पैग़म्बर साहब के परिवार का प्रतिनिधि था। मैं पद के लिहाज़ से इस्लामी धर्म शास्त्र का वक्ता था और चूँकि मेरी तथा इस्लाम की शिक्षा–दीक्षा का केन्द्र एक ही था, अर्थात पैगम्बर साहब की वही छाती जो अल्लाह के सन्देश उतरने का स्थान था, मेरे उठने बैठने तथा स्वप्न की मंजिल थी। मेरी दृष्टि में इस्लामी रीतियों का जो आदर हो सकता था, किसी अन्य व्यक्ति की दृष्टि में नहीं हो सकता था।

मैंने देखा, कि वही मूर्ति पूजा जिसे मेरे नाना ने अरब प्राय द्वीप से मिटाने का प्रयत्न किया

था आज मानवीय सामर्थ्य के भेस में एकेश्वरवाद को नष्ट कर रही थी। मैंने साफ़–साफ़ इनकार कर दिया कि मैं यज़ीद की बैअत नहीं करूंगा। मुझे मालूम था कि इस सूरत में मेरे लिए क्या होगा किन्तु मैं इसके लिए तैयार था।

यज़ीद की ख़िलाफ़त

''मुआविया'' ने मेरे विषय में मौन से काम लिया। किन्तु मुआविया का देहान्त हुआ और यज़ीद राज्य सिंहासन पर जमकर बैठ गया। उसके घमंड तथा अभिमान के लिये मेरा व्यवहार अत्यन्त अप्रिय था, इस लिए कि मैंने उसकी ''बैअत'' नहीं की थी। उसनें मदीने में, अपने गवर्नर को पत्र लिखा कि ''हुसैन से बैअत अवश्य लो, नहीं तो उनका सर काट कर मेरे पास भेज दो''। मुझे इस संदेश से जरा भी अचम्भा नहीं हुआ, इसलिये कि मैं इसे पहले से अपने विचार में रक्खे हुए था। ''बैअत'' मेरे लिए एक बिलकुल असम्भव बात थी, सर कट जाना अवश्य सरल था, परन्तु उस आत्म–रक्षा के कर्तव्य को पूरा कर देने के बाद जो इस्लाम का एक बुनियादी सिद्धाँत है।

मैं ने इस कर्तव्य को पूरा करने के लिए अपनी मातृभूमि को छोड़ देना निश्चित कर लिया।

वतन से जुदाई

मैं किसी से लड़ने भिड़ने नहीं जा रहा था, इस लिए मैं ने अपने घर भर को (जिसमें स्त्रियां तथा बालक भी थे) अपने साथ लिया मेरे मुख्य मुख्य नातेदार भाई, भतीजे, बेटे मेरे साथ थे। मैं ने ''मदीने'' से इनके अतिरिक्त किन्हीं भी सहायकों तथा मददगारों को चलने का निमंत्रण नहीं दिया। इसी से तुम मेरा उद्देश्य समझ सकते हो।

अल्लाह के घर में शरण

मैं ने पैग़म्बर साहब के मज़ार से बिदा होने के पश्चात अल्लाह के घर ''काबा'' से अच्छा कोई स्थान न पाया इस लिये मैं '' मक्का'' में जाकर ठहर गया। मैं ने यहां भी सेनायें एकत्र करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। सम्भव था कि यहाँ मुझे चुपचाप जीवन बिताने दिया जाता, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। मैं सच कहता हूँ कि यदि मैं ''हज'' को छोड़कर ''मक्का'' से प्रस्थान न कर जाता तो, ''काबा '' के निकट ही मेरे रक्त की वर्षा होती। परन्तु मैं किसी प्रकार सहन न कर सकता था कि मेरे अस्तित्व के कारण ''काबा'' की प्रतिष्ठा मिट जाय।

'इराक़' की ओर रवान्गी

मैं ''मक्का'' से निकल खड़ा हुआ। अब मैं किधर जाता? 'इराक़' के लोग मुझे बुला रहे थे तथा मैं अपने चचेरे भाई, ''मुसलिम'', को वहाँ की स्थिति देखने कि लिये भेज भी चुका था। उन्होंने मुझे यह सूचना भी दी थी कि यहाँ के लोग आपकी धार्मिक शिक्षा को ग्रहण करने के लिये उत्सुक हैं। मुझे अवश्य वहीं जाना चाहिये था। मैं रवाना हुआ, किन्तु इस दौरान में ''कूफ़ह के सिंहासन पर मेरे शत्रुओं का अधिकार हो चुका था। वहाँ का वातावरण मेरे बिल्कुल विरुद्ध हो गया था।

वास्तव में 'कूफ़ह' के मेरे, सच्चे मानने वालों ने जो मेरे अस्ली बुलाने वाले थे, कोई गद्दारी नहीं की। उन्हें स्वयं सहसा ऐसी कठिन स्थिति का सामना करना पड़ा कि वे बेबस हो गये किन्तु फिर भी उन्होंने मेरे साथ वफ़ादारी की हद कर दी। कड़े पहरे तथा नाकों के संरक्षण के होते हुए भी यह लोग 'कूफ़ह' से निकल कर मेरे पास पहुंच

गये तथा मेरे लिये अपने प्राण तक दे डाले।

मेरे प्रिय एलची (दूत) मेरे भाई ''मुस्लिम' की ''कूफ़ह'' में हत्या कर दी गई। उसने वह काम किया जिसका एक अमिट प्रभाव मेरे चित्त पर स्थापित है। मुझे अब 'कूफ़ह' से कोई शुभ आश न थी परन्तु मुझे अब 'मक्का' या 'मदीना' पलट जाना भी सम्भव न था, मैं ने अपनी ओर से युद्ध का न कोई ख़याल किया था न कोई सामान, मेरे साथ मेरे ही ख़ास आदमी थे। इस स्थिति में कोई कारण न था कि मेरे विरूद्ध जंग की बातें की जातीं। मैंने जो पत्र 'कूफ़ह' वालों को लिखा था उसमें भी स्पष्ट रूप से लिख दिया था कि 'इमाम' (धार्मिक नेता) का अर्थ है, केवल वह जो सत्य का पालन करे, अल्लाह के निर्देश को ध्यान में रक्खे तथा पैग़म्बर साहब की रीति का ध्यान रखे। मैं बादशाहत तथा राज्य के लिये संसार की शांति को मिट्टी में मिलाना नहीं चाहता था, इसको मैं ने अपनी कार्य प्रणाली द्वारा पूर्ण रूप से प्रकट कर दिया था। किन्तु 'कुफ़ह' से मुझे गिरफ़्तार करने के लिये सेनायें भेजी गईं। मैं ने इस विरोधी सेना के आने के समय वह व्यवहार ग्रहण किया कि, उस सेना को जो उस समय प्यास से बिलक रही थी प्रयत्न कर के पानी पिला दिया। उस समय मेरे सम्पूर्ण अन्य विचारों पर मानव–सहानुभूति छाई हुई थी। मैं पूर्ण संसार से यह चाहता भी हूँ कि वे अपने बीच हजारों मत भेद होते हुए भी मानव–सहानुभूति को कभी न भुलायें तथा इसमें पक्ष–पात से काम न लें।

मेरी दृष्टि में न इसका कोई बदला था न मैं इसका कोई मुआवज़ा चाहता था, परन्तु मानवता की मांग यह हरगिज़ नहीं थी कि 'आशूर' तथा आशूर' से दो दिन पूर्व से इसी सेना द्वारा मुझ पर तथा मेरे नातेदारों, बलिक छोटे छोटे बालकों पर भी पानी बन्द कर दिया जाये। बहर हाल मैं उस सेना के पहरे में, जो 'कूफ़ह से आई थी, 'कर्बला' की भूमि पर पहुँच गया।

कर्बला पहुंचने के पश्चात्

मूझे दूसरे ही दिन से हज़ारों सवारों की टुकड़ियां लगा तार आती हुई दिखाई देने लगीं। सेनाओं से पूरा मैदान उबलने लगा। मेरे साथ मेरे सत्रह अठठारह नाते दार थे, और या फिर मेरे वे मित्र थे जो 'कूफ़ह' तथा अन्य दूसरे स्थानों से, मेरे पहुँचने का समाचार सुनकर, किसी प्रकार मेरे पास पहुँच गये थे। इन की संख्या सौ से अधिक न थी। मुझे आत्म–रक्षा के सिद्धांत को बहर हाल पूरा करना था, किन्तु इस शर्त से कि मुझे महत्त्वपूर्ण धार्मिक पथ का बलिदान न देना पड़े। मैं ने ऐसी बातें इख़्तियार कीं कि स्थिति सुधर जाए तथा युद्ध की परिस्थिति उत्पन्न न होने पाये। मेरी कार्य–विधि इतना सुलझी हुई थी कि स्वयं यज़ीदी सेना का कमान्डर 'उमर–साद' भी इस बात को मान गया कि मैं सुलह के मार्ग को अपनाए हुये हूँ। उसने 'कूफ़ह' के गवर्नर 'इब्ने ज़ियाद' को इस विष्य का पत्र भी लिखा, परन्तु 'इब्ने–ज़ियाद' को राज्य का अभिमान तथा शासन का नशा था। उसने मुझे पहचाना ही न था कि मैं कठिनाइयों को वहाँ तक सहन कर सकता हूँ। उसने मेरी सुलह पसन्दी को निर्बलता का परिणाम विचारा था। इस लिये उसने कहा कि 'हुसैन' को 'यज़ीद' की बैअत करना चाहिये' यही सूरत सुलह की है। मेरे लिये यह वही पहला प्रश्न था जो अब अन्त में भी मेरे सामने था और यह निश्चित बात थी कि मुझे 'यज़ीद' की 'बैअत' कभी नहीं करना है। सुलह का अनुभव मेरे भाई तथा स्वयं मुझे मेरे प्रारम्भिक काल से इस समय तक हो चुका था। अब इस प्रकार की सुलह की कोई सम्भावना न थी जिसका

परिणाम मेरी नहीं बल्कि मेरे सिद्धाँत, पंथ तथा धरोहर और ईमानदारी का नाश हो। मेरे सामने सेनाओं का समुद्र लहरें मार रहा था । मेरे चारों ओर वीरानी तथा बरबादी के अतिरिक्त कुछ दिखाई न पड़ता था। मेरे प्रिय भाई, भतीजे तथा सन्तान के सुन्दर मुखड़े उपस्थित थे। मेरे साथ पर्दादार स्त्रियां थीं, छोटे–छोटे बालक भी उपस्थित थे। नदी पर सेना का पहरा बैठ गया था। एक बूँद पानी हम तक पहुँचना असम्भव था और मैं छोटे–छोटे बालकों को प्यास के मारे तड़पते–बिलकते देख रहा था यह सब वे कारण थे जो मुझे 'यज़ीद' की बैअत' का निमंत्रण दे रहे थे। किन्तु इन सब के सम्मुख उस शिक्षा का ध्यान था जो मेरे नाना की फैलाई हुई थी, मेरे बैअत कर लेने से उस शिक्षा का नाश हो जाता। मेरा इरादा पहले से ही अटल था परन्तु व्यवहारिक रूप से जितनी कठिनाइयां बढ़ती थीं मेरे साहस में वृद्धि होती जाती थी। नवीं मुहर्ररम का संध्या समय था जब इस महान् सेना ने हम पर आक्रमण भी कर दिया, पर मैंने एक रात्रि की मुहलत ले ली। यह अवकाश, मैंने किसी सांसारिक उद्देश्य से नहीं लिया था बल्कि एक ओर तो मुझे अन्तिम बार अपने अल्लाह की प्राथना में पूरी रात व्यतीत कर देनी थी, तथा दूसरीओर मैं यह चाहता था कि मेरे साथियों में से लोग मेरा साथ छोड़ कर जाना चाहें, उन्हें जाने का अवसर दे दूँ। इस लिये कि मैं किसी को बिना सोचे समझे अपने साथ शहीद होने पर विवश करना नहीं चाहता था। मैं ने अपने साथियों को एकत्रित किया और प्रकट रूप से यह आज्ञा दे दी कि वे मेरा साथ छोड़ कर चले जायें। किन्तु क्या कहना इन वीरों की विश्वास पात्रता तथा कर्तव्य पालन का, जिन्हों ने मेरे दिये हुए अवकाश से कोई लाभ न उठाया तथा एक ज़बान होकर कहा कि हम कभी आप का साथ नहीं छोड़ेगें। मुझे संसार के सामने अपने इन साथियों को आदर्श बना कर प्रस्तुत करना था। मुझे विश्व के नेताओं का नमूना दिखलाना था, कि यह बिल्कुल ग़लत सिद्धांत है कि मनुष्य किसी कठिन आचरण के लिये लालच देकर अथवा वरग़ लाकर दूसरों को तत्पर करे और उससे अभिप्राय यह हो कि यह लोग एक हद तक हमारी ढाल बन जाएं। उन लोगो ने जो कहा था वही कर दिखाया। दसवीं मुहर्रम के प्रातः काल से यह मेरे वीर सिपाही निरंतर अपने प्राण उसी सिद्धांत की रक्षा में, जिस पर मैं जमा हुआ था निछावर करते रहे। यह एक आश्चर्यजनक वफ़ादारी का उदाहरण समझना चाहिये कि जब तक उनमें का एक भी बाक़ी रहा, मेरे किसी नातेदार, किसी जवान अथवा किसी कम–सिन बालक तक को कोई हानि नहीं पहुंची। जब मेरे यह वीर सैनिक संसार से प्रस्थान कर गए तो अब मैं था और मेरे नातेदार। यह मेरे लिये बहुत सहल था कि मैं स्वयं आगे बढ़कर अपना सर कटा दूं किन्तु मुझे तो अपनी सहनशक्ति की पूरी–पूरी परीक्षा देनी थी। इस लिये मेरे नातेदार मुझ से छुटने लगे। मैं इन में से किस को पहले मृत्यु के मुख मैं जाने की आज्ञा देता। इसमें मेरे भाई हसन की निशानी थी, मेरे पिता के स्मारक थे। मैं ने यह उचित जाना कि सबसे पहले अपने प्रिय पुत्र 'अली अकबर को, जो पैग़म्बर साहब के हमशक्ल भी थे, मरने के लिये भेज दूं। यह मंजिल मेरे लिये अवश्य कठिन थी पर जब मैं इस कठिनाई को झेल गया तो अनुमान नहीं किया जा सकता कि मुझे सफलता का कितना अनुभव हो रहा था।

अब मेरे दूसरे नातेदारों की बारी थी। मेरा भतीजा क़ासिम शहीद हुआ। दूसरे नातेदार भी यहीं एक एक करके मौत की नींद सो गये। सबके अन्त में मेरा वीर भाई 'अब्बास' (अ0) मुझ से रुख़सत हुआ। मैं उसके वियोग को किसी प्रकार

सहन नहीं कर रहा था, इस लिये कि मेरा झंडा उसी के हाथ में था मेरी छोटी सी सेना का चिन्ह उसी के दम से अवशिष्ट था। परन्तु जब और कोई न रहा तो आख़िर 'अब्बास' (अ0) भी युद्ध कर स्वर्ग को सिधार गया। मेरी कमर इस शोक से टूट अवश्य गई, पर मेरी कार्य–शक्ति में कमी उत्पन्न नहीं हुई। अब स्वयं मेरी बारी थी– मैंने तलवार खींची। उस हद तक मुझे अवश्य युद्ध करना था जितनी कि मुझ में मानव शक्ति थी। तुम्हें मालूम है कि इन सम्पूर्ण शोकों के होते हुये तथा, इन आपत्तियों के बाद भी मैंने युद्ध–क्षेत्र में अपने बाप, दादाओं की याद भूलने नहीं दी। बहर हाल हज़ारों सैनिकों से मैं ने अकेले युद्ध किया, इसमें मुझे जितना घायल होना चाहिये था उसका अनुमान तुम कर सकते हो। अन्त में वह अन्तिम कठिन चरण, जो मेरे लिये पहले ही अत्यन्त सहज था, आ ही गया। मैं घोड़े से ज़मीन पर गिरा तथा 'शिम्र' के खन्ज़र ने मेरे सर और गर्दन का आपसी सम्बन्ध तोड़ दिया। मेरा सर काटा गया तथा बर्छी पर बुलन्द किया गया। 'इब्ने ज़ियाद' की सेना ने वह सब कुछ किया जो एक अत्याचारी के अत्याचार की अन्तिम सीमा हो सकती है, किन्तु इन सब के बाद विजय किस की हुई? तथा हार किस की?

मैं अपने आचरण से न लज्जित हूं न क्षुब्ध, परन्तु संसार जानता है कि 'यज़ीद' लज्जित हुआ और बहुत लज्जित। उसकी ज़िन्दगी मौत बन गई तथा मेरी मृत्यु ने मुझे अमर बना दिया। मुझे तुमको संदेश भी यही देना है कि किसी पवित्र तथा आदरणीय उद्देश्य के लिये सांसारिक कठिनाइयों की कभी परवाह न करना। तुम्हारी मानवता का यही सत्य है।

तुम जो मेरे स्मारकों की स्थापना करते हो और याद ताजा करते हो उनका सारांश यही होना चाहिये कि तुम मेरे उद्देश्यों की ऊंचाई को भी समझ सको तथा व्यवहारिक रूप से उसके पालन का प्रयत्न करो। स्मरण रखो– मैं किसी विशेष सम्प्रदाय से विशिष्ट सम्बन्ध नहीं रखता हूं। जो मेरे सिद्धांत तथा पथ पर ध्यान दे और उससे शिक्षा ग्रहण करे वही मुझ से लाभ उठा सकता है।

□□□

सलाम

मु0 र0 आबिद

चले जो लेखनी तो सत्य को उभार चले,
यथार्थवाद के पग पर दिये संवार चले।
मदीना ज्ञान की गंगोत्री नजफ़ गंगा,
बड़े बड़े जहाँ दर्शन के फूल वार चले।
अली (अ0) को मानता सन्सार बोध का अवतार,
विचारकों के नमन भावना के पार चले।
लुटा लुटा के घर अपना, बुझा बुझा के दिये,
हुसैन धर्म के आयाम सब निखार चले।
हुसैन धन्य है तेरा असम असीम सहन,
क्रूरता के कलाकार बाज़ी हार चले।
अरे! वह नन्हा गला और तीन भाल का तीर,
मसलने बाण को मुस्कान की फुहार चले।
हुसैन की ही बहन है,न बोल इस से यज़ीद,
कहीं न तेरी ही सत्ता के बल उतार चले।

हुसैन (अ०) के अज़ादारों के नाम

अज़ादारी के दिन इक़दाम व अमल के दिन हैं

मौलाना रज़िउद्दीन हैदर साहब
संस्थापकः यादगारे हुसैनी इण्टर कालेज, इलाहाबाद

अज़ीज़ाने मुहतरम! यह मुहर्रम का ज़माना है। मकरूहाते दुनिया से अपने आप लगाव कम हो गया है। दुनिया की चाहत और अपनी ग़रज़ के काले बादल छट गये हैं और हक़ व सदाक़त की राह की कभी न मिटने वाली क़ुर्बानी का नूर अपनी पूरी चमक के साथ हर तरफ फैला हुआ है आसमान व ज़मीन, अतराफ व जवानिब, फिज़ा माहौल, घर बाहर सब ग़म से भरे नज़र आते हैं। सच तो यह है कि जब दिल मुतास्सिर होता है तो सारी दुनिया इसी रंग में रंग जाती है। अज़ाए हुसैन (अ0) एक काएनाती असर है जो मुनज़्ज़म कोशिशों और मुकम्मल साज़िशों के बावजूद आज तक न मिटाया जा सका बल्कि उलटी तदबीरों से उसके मुज़ाहेरों में हमेशा अकेलापन और नयापन ही पैदा होता रहा। बात यह है कि जो ग़म बाहरी माहौल से पैदा होते हैं वह बाहरी इलाज से दूर भी हो जाते हैं मगर जो ख़लिश, जो तड़प इन्सान के अन्दर नफ़्स की गहराइयों से फ़ितरी तौर पर उभरती है उसका दूर करना बहुत मुश्किल है। अगर यह ज़िद की जाए कि जिस्म के अन्दर दौड़ते हुए ख़ून की परेशान लहरों और सीने के अन्दर धड़कते हुए दिल की मुसलसल हरकत को क़रार व सुकून मिल जाए तो ऐसी बात मज़ाक़िया होगी और ऐसे शख़्स को अक़्ल से ख़ारिज समझा जायेगा। इसलिए कि इस मुतालबे में जिन्दगी की उस बुनियादी जड़ ही पर चोट लग रही है जिसके बग़ैर ज़िन्दगी ज़िन्दगी नहीं! कर्बला का वाक़ेआ इन्सानियत के जिस्म में उसी दौड़ते हुए ख़ून और धड़कते हुए दिल की जगह पर है जो हमारी हक़ीक़ी व इन्सानी ज़िन्दगी का ज़ामिन है जब तक इस ज़मीन पर एक इन्सान भी बाक़ी रह जायगा वह इस भारी दौलत को हमेशा सीने से लगाए रहेगा।

ग़मों की दुनिया में हुसैन के ग़म की अहमियत

इन्सान और ग़म का अज़ल से साथ है इसके बाहमी ताल्लुक़ पर हर बड़े शायर, फ़लसफ़ी और मुफ़क्किर ने अलग–अलग उनवानात से अपने ख़यालात का इज़हार किया है और इतना कुछ कह दिया है कि अब मज़ीद किसी इज़ाफे की गुन्जाइश नहीं मालूम होती, यह ज़िन्दगी ग़मों का मजमुआ है ऐसा मजमुआ जिसमें कोफ़्त भी है और कैफ़ भी। ग़म भी है और ख़ुशी भी और जिससे असर लेने और मज़ा लेने का नाम है हयात! हर इन्सान किसी न किसी ग़म में ज़रूर फंसा है। दुनिया का ग़म हो या ज़िन्दगी का ग़म, रोज़गार का ग़म हो या इश्क़ का ग़म, माल व मन्सब का ग़म हो या आल व औलाद का ग़म, ऐश का ग़म हो या गुज़री उम्र का ग़म वग़ैरा–वग़ैरा! इनमें हर ग़म ऐसा है जो इन्सान की रगे हयात से जोंक की तरह चिमटा हुआ उसका ख़ून चूस रहा है। ग़मों की इस आबाद

दुनिया में ग़मे हुसैन भी एक ग़म है लेकिन इसकी हैसियत अलग है। इसका अन्दाज़ जुदा है। इसके असरात और हैं और इसके नतीजे सबसे अलग हैं, दुनिया का हर ग़म हमारे ही ख़ून पर पल रहा है। हर लमहा हयात मिट रही है और ग़म पर शबाब आ रहा है लेकिन यह ग़मे हुसैन (अ0) रहमत का सरचश्मा है जहाँ ज़िन्दगी के प्यासे आबे हयात पी–पी कर हमेशा सैराबी हासिल कर रहे हैं। यह ग़म हमसे कुछ नहीं माँगता बल्कि इसकी बारगाहे अता से अच्छे अख़लाक़ और इन्सानी बलन्दी का पाक ख़ून हमारे मुर्दा दिलों में दौड़ाया जाता है। जुमूद व बेहिसी का रंग और दुनिया की चाहत व नफ़्स परस्ती का मैल इसी से दूर होता है। इस ग़म का दूसरा नाम है इन्सानियत और इसके मुज़ाहेरे को कहते हैं अज़ादारी, जो इस के फ़ौरन बाद से शुरु होकर अलग–अलग दौर से गुज़रती हुई हमारे ज़माने तक पहुँची है। अब यह आपको इख़्तियार है चाहे इसे तारीख़े इन्सानियत के नाम से पुकारें और चाहे अज़ादारी की तारीख़ कहें। मगर कितने अफ़सोस का मक़ाम है कि एक फ़ायदा और ज़िन्दगी देने वाला ज़रिया सिर्फ़ रस्मों की चहारदीवारी में क़ैद होकर रह गया है और इससे हमने वह असरात हासिल नहीं किये जिनसे इल्मी व अमली तौर पर ऐवाने हयात के सारे कंगरे चमकने लगते!

एक फ़ायदेमंद राय

कुछ अरसा हुआ डाक्टर अल्लामा सैय्यद मुजतबा हसन साहब क़िब्ला कामुनपूरी ने तारीख़े अज़ादारी की तरतीब व तदवीन की तरफ अरबाबे मिल्लत को ध्यान दिलाया था और यह ख़याल ज़ाहिर किया था कि अगर हर शहर, क़स्बे और गाँव में इस काम के लिए कोई एक बन्दा–ए–ख़ुदा तैयार हो जाए और मालूमात का ज़ख़ीरा भी फ़राहम कर ले जिसे बाद में अलग–अलग उनवानों के तहत सलीक़े से सर्फ़ किया जा सके तो इस तरह शीया और अज़ादारी की तारीख़ का काम एक ही वक़्त में बहुत आसानी से तैय्यार हो जायगा और फिर वह कमी दूर हो जाएगी जो मुद्दतों से दिलों में चुटकिया ले रही है।

आज दुनिया की छोटी से छोटी और पस्त अक़वाम ने अपनी क़ौमी तारीख़ की तरतीब का काम ख़त्म कर लिया है। जिनके यहाँ तारीख़ी मालूमात का कोई ज़ख़ीरा न था उन्होंने अपने मफ़रूज़ा रिवायती अफ़सानों और जारी मज़हबी रस्मों की बुनियाद पर अपनी क़ौमी तारीख़ की पूरी इमारत खड़ी कर दी है। मगर वह क़ौम जो न सिर्फ़ हर दौर में तारीख़ की तदरीजी रफ़्तार के हमपल्ला रही है बल्कि कभी–कभी तारीख़ी अवामिल का एक क़ौमी हिस्सा बनकर उसके रास्ते तय करती रही है आज अपनी बेहिसी और नासमझी की की वजह से टूटी–फूटी दास्तान की भी हैसियत नहीं रखती। तारीख़ ने पुराने अफ़सानों तक को अपने दामन में जगह दे रखी है मगर उस क़ौम के किसी कारनामे को क़ौम की हैसियत से कोई मक़ाम अता नहीं हुआ है। अगर इन्साफ़ से देखा जाए तो हयात का वह कौन सा हिस्सा है जो इस मुर्दा क़ौम की बेलौस आबियारी ने नहीं लहलहा रहा है। यह अलग एक मुस्तक़िल मौज़ू है, बड़ा लम्बा चौड़ा कि शिया क़ौम का इल्म व फ़न में बढ़ने और दुनिया की आम तरक़्क़ी की रफ़्तार में कितना हिस्सा है मगर तारीख़ लिखने वाले का क़लम इस जगह पहुँच कर रुक जाता है और वह बड़ी होशियारी से दामन बचाकर गुज़रने की कोशिश करता है। अगर कोई मजबूरी

हो गई और किसी का ज़िक्र ज़रूरी हो गया तो वह बस रवादारी के साथ पर्सनल कामों के नतीजे के तौर पर बयान कर दिया जाता है कुछ ही दिन हुए मशहूर क़लमकार अदीब व शायर फ़लसफी को ग़ैर शिया साबित करने की मुहिम चलाई गई थी तहक़ीक़ व तहरीर पर पूरा ज़ोरे क़लम लगाया जा रहा था मगर यह कोशिश बेकार रही और यह कोशिश आप अपनी मौत मर गई। लेकिन यह सोचने की बात है कि यह सूरते हाल ख़ुद हमारे ही एहसास और अमल के ख़त्म होने का नतीजा है और हम ख़ुद बराहे रास्त इसके ज़िम्मेदार हैं। हमने दुनिया के वाक़ेआत के तूफ़ान को अपने ख़ून के धारों से बार–बार रोक तो दिया है मगर कभी इसका ख़याल नहीं किया कि हमारे लहू की सुर्ख़ी दास्ताने तारीख़ का उनवान भी बन जाए। वक़्त के तारीख़ लिखने वाले ने जब क़लम हाथों में लिया तो हम बेनियाज़ी के साथ गूँगे हो गये और वह निहायत बेदर्दी से या तो हमें नज़रअन्दाज़ कर गया या हमारे रौशन व रंगीन वाक़ेआत को तारीक व दाग़दार बनाकर पेश कर गया जिसकी बिना पर दुनिया हमारे बारे में निहायत ख़तरनाक क़िस्म की ग़लतफहमियों में फंस गई है। यह ज़ालिमाना बर्ताव हमारे उन कारनामों के साथ किया गया जो दूसरे इस्लामी फिरक़ों के साथ एक मुशतरका हैसियत रखते थे मगर अज़ादारी जो ख़ालिसन हमारा क़ौमी वतीरा और मज़हबी फरीज़ा है और जिसे हम शहादत के बाद से अब तक एक अमली एहतेजाज की हैसियत से हर साल मुहर्रम के दिनों में क़ायम किये हुए हैं इसे तारीख़े आलम कोई मक़ाम क्यों देने लगी।

एक ग़ौर तलब बात

मुहर्रम के दिन क़रीब आते ही इश्तेहार व पोस्टर छपने लगते हैं। तक़रीर व तहरीर के ज़रिये अवाम को यह ज़हन नशीन कराने की कोशिश की जाती है कि अज़ादारी बिदअत है, अज़ादारी हराम है, मैं पूछता हूँ कि दुनिया की वाक़ई कितनी फ़ुज़ूल व बेकार रस्में हैं, कितने बकवास काम हैं जिन्हें इन्सान दिन रात करता रहता है मगर कभी किसी इस्लाह करने वाले या इस्लामी दर्द रखने वाले को उनके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने की तौफीक़ नहीं होती और अब तो कुछ वाक़ई ग़ैर इस्लामी मामले जैसे बेपर्दगी, बेहयाई वग़ैरा तो मुसलमानों के समाज का हिस्सा बन रहे हैं और किसी के कान पर जूँ नहीं रेंगती। लेकिन यह ज़माना आते ही हमिय्यते इस्लाम की रग फड़कने लगती है और सारा साज़े अमल बजने लगता है। आख़िर ऐसा क्यों है? इसी से अन्दाज़ा कीजिये कि अज़ादारी सिर्फ कुछ रस्मों के बजा लाने का नाम नहीं है बल्कि ख़ैर व शर की एक मुसलसल पुकार है और हक़ व सदाक़त की बराबर एक ललकार है जिसे माद्दियत के नशे में चूर व मदहोश दुनिया को हर साल सुनाकर होश में लाने की कोशिश की जाती है। यही वजह है कि मुवाफ़िक़ीन से ज़्यादा मुख़ालेफीन इसकी अहमियत का एहसास रखते हैं और इस आवाज़े हक़ को हर क़ीमत पर दबाने की नाकाम कोशिश में लगे रहते हैं।

हम और हमारे असलाफ़

हमारे असलाफ़ ने इस क़यामे अज़ादारी में जानी व माली क़ुर्बानियाँ दी हैं, अपनी हड्डियों की असास पर अपने ख़ून के गारे से इस तामीर को बुलन्द किया है। दुनिया के बदले हुए हालात अब उन क़ुर्बानियों के हमसे तलबगार नहीं हैं अब फ़िक्र और अमल की आज़ादी के माक़ूल दायरे क़ायम हो चुके हैं लेकिन क्या यह भी ज़रूरत बाक़ी नहीं रहती कि हम बुज़ुर्गों की उन जाँकाहियों

को क़लमबन्द करके दुनिया की तारीख़ के हवाले कर दें। इससे एक ही वक़्त में हमें दो फायदे हासिल होंगे एक तो अज़ा की अहम्मीयत के सिलसिले में क़ौम का मुस्तक़िल किरदार सामने आ जाएगा जिससे पूरी क़ौमी सीरत पर रौशनी पड़ सकेगी। और दूसरे हम अपने बुजुर्गों और उनके कारनामों को गए हुए वक़्त से छीन–छीन कर एक नई ज़िन्दगी बख़्शेंगे और इस तरह अपनी सआदतमन्दी और दयानत पसन्दी का सुबूत फ़राहम करेंगे।

मुहर्रम के दिनों में अगर आप इस फरीज़े की तरफ़ ध्यान देने लगे तो मुझे यक़ीन है कि यह काम काफ़ी हद तक इसी साल अन्जाम पा जाएगा। हमारे उलमा व ज़ाकेरीन अगर इसकी अहमियत का एहसास फरमाएँ और जिन जगहों पर ज़ाकिरी के सिलसिले में तशरीफ ले जाएँ वहाँ के हालात बाख़बर हज़रात से पूछ करके क़लमबन्द कर लें तो यह क्या मुश्किल है।

मैं एक नज़री ख़ाका इस सिलसिले में पेश कर रहा हूँ। इसमें ज़रूरत के मुताबिक़ घटाया बढ़ाया भी जा सकता है।

1– बस्ती का नाम, मूरिसे आला कौन थे, कब आए? और कहाँ से आए? अज़ादारी कब और किसने शुरु की?

2– शिया और ग़ैर शिया इमामबाड़े

3– शिया और ग़ैर शिया मुक़र्रिर, मुहद्दिस, मजलिस ख़्वान, तहतुल्लफ्ज़ ख़्वान, मर्सिया ख़्वान, नौहा ख़्वान वग़ैरा।

4– शिया और ग़ैर शिया अहले क़लम, अदीब व शायर जिसने कर्बला के वाक़ेये पर कभी कुछ लिखा हो।

5– अज़ा की रस्मों के दर्जा ब दर्जा ज़माने। तबर्रुकात और शबीहों के तफ़ासील फोटो वग़ैरा।

6– शियों की क़ौमी, मज़हबी, समाजी, अख़लाक़ी, इस्लाही, इक़्तेसादी और सियासी अन्जुमनें।

मुमकिन है यह बात अभी कुछ लोगों की नज़र में अहमियत से ख़ाली हो और वह आसानी के साथ प्रोपेगण्डे की मकरूह लफ्ज़ के साथ ताने दें मगर ज़रा ग़ौर तो कीजिये कि आज जो नुक़ूश आप छोड़ जाएँगे वह सौ, दो सौ, पाँच सौ और हज़ार बरस बाद तारीख़ का कितना क़ीमती सरमाया बनेगा इसका सही अन्दाज़ा भी इस वक़्त हम नहीं कर सकते। आज इस मशीनी और ऐटमी दौर में भी जब इन्सानी तरक़्क़ी के नुक़्त–ए–आग़ाज़ की तलाश की जाती है तो अहदे अतीक़ के उस हिजरी ज़माना से भी गुज़रना पड़ता है जिसका तसव्वुर इस बीसवीं सदी के इन्सानों के लिए हद दर्जा मज़ाक़ है मगर अहले फिक्र व नज़र जानते हैं कि अगर तहज़ीबे इन्सानी का यह सिरा न मिला होता तो इरतेक़ा की सारी सलाहियतें आज तक सर बगिरीबाँ रहतीं। हिजरियात से ऐटमबम तक हमारी माद्दी और ज़ाहिरी ज़िन्दगी के फलने फूलने की कहानी है मगर कर्बला का वाक़ेया इसके तमाम जुज़ियात व मुज़ाहेरात हमारी रूहानी व मानवी हयात की एक मुसलसल दास्तान है जो आला अख़लाक़ी व इन्सानी अक़दार को अपने अन्दर समोये हुए वक़्त के अथाह समुन्दर में ज़मज़मा संज है और इसी तरह रहेगी यहाँ तक कि साहिले मुराद नज़र आए जहाँ फ़र्ज़ शनास इन्सानियत पहुँच कर अपने इनामात से बहरामन्द हो सके।

□□□

हुसैन (अ०) और हिन्दुस्तान

सैय्यदुल उलमा सैय्यद अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
अनुवादक– जनाब सै0 मुहिब्बुल हसन रिज़वी 'समर' हल्लौरी

उस जाति या उस संस्था के विषय में कुछ कहना ही नहीं है जो ''जिस की लाठी उसकी भैंस'' की कहावत को ठीक समझती हो। निस्सन्देह! ऐसी संस्था के लिए कर्बला का जिहाद (धर्मसंग्राम) और कर्बला के शहीद का उत्तम बलिदान एवं उनकी अमिट सफलता और विजय केवल हार ही है। और यही कारण है कि कर्बला घटना की याद उन्हें अपनी ओर आकर्षित नहीं करती। किन्तु ये लोग भी खुल कर हज़रत इमाम हुसैन(अ0) के इस महान कार्य के ख़िलाफ मुँह नहीं खोल सकते और यही हुसैन (अ0) की सच्चाई का बड़ा सबूत है। यद्यपि वे मायाबन्दी हुसैन (अ0) के ख़िलाफ मुँह खोलना भी चाहते हों तो उनमें इतना साहस ही नहीं और अगर साहस भी है तो वे जानते हैं कि उन्हें इसमें सफलता न मिल सकेगी। फिर भी वे चोरी छुपे हुसैन (अ0) के मातम को मिटाने के के जो प्रयास करते हैं, प्रायः वह दिखाई देते रहते हैं। और उनके यह प्रयास उनके दिल का हाल बताने के लिये बहुत हैं। राजनीति के क्षेत्र में पश्चिमी राष्ट्र केवल ताक़त को सही समझने को उचित जानते हैं और उनमें कोई भी ऐसा नहीं है जो उसके ख़िलाफ हो। यह और बात है कि कोई हिटलर बनकर तलवार और तोपों से अपनी शक्ति को दिखाए और कोई विश्व–शान्ति के नाम पर अपनी ताक़त को राजनीति के रंग में रंग कर सामने आए, परन्तु इनमें से हर एक के दिल दिमाग़ पर हिटलरी छाई हुई है। इसीलिये यदि ये आपस में कोई संधि भी करें, तो उस पर टिके नहीं रह सकते और वे विश्वशान्ति के लिये लाभदायी सिद्ध नहीं हो सकती। कहावत है कि ''दो फ़क़ीर एक कमली में सो सकते हैं'' और ''दो बादशाह एक देश में नहीं रह सकते'' चूँकि साइंस के इस युग में जब सभ्यता का सूर्य संसार के कोने कोने को चमकाए हुए हैं, पूरा संसार एक मुल्क की हैसियत रखता है और अब बादशाहों की जगह वर्तमान काल की शक्तियों ने ले ली है इसलिए अब कहावत यह होनी चाहिए कि ''दो हिटलर एक विश्व में नहीं रह सकते'' और फिर इन हिटलरों के बीच यदि कोई संधि भी हो तो वह कै दिन चलने की!

यूरोप जो अपने ईसाई धर्म के साथ–साथ जीवन के हर क्षेत्र में मायावादी हो गया है, किसी ऐसे युद्ध को ध्यान में भी नहीं ला सकता जो आत्मावाद या अध्यात्मिकता पर आधारित हो। यही कारण है कि यूरोप के लेखकों ने जिस ज़ोर के साथ उन मुसलमान विजेताओं का उल्लेख किया है जिन्होंने अपनी तलवार के बल पर देश जीते हैं, उतने ज़ोर के साथ और उतनी महत्त्वता के साथ उन्होंने कभी कर्बला के महाविजयी कारनामों पर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि यूरोप के इन

इतिहासकारों के पास वह दृष्टि नहीं है जो हुसैन (अ0) की इस जीत को देख सके, जो उन्होंने बेबसी की हालत में अपने शत्रु यज़ीद पर पाई थी। पूर्वी गोलार्ध में भारत ऐसा देश है जहाँ सदा आध्यात्मवाद की चर्चा रही। और इस देश में पैदा होने वाले सभी धर्मों ने अहिंसा की शिक्षा उस समय दी जब संसार हिंसा का पुजारी बना हुआ था। और इस अहिंसा की दौड़ में हर धर्म अपने को आगे बढ़ाने की कोशिश में लगा रहा। किसी धर्म ने अहिंसा का अर्थ ''मानवहत्या'' से बचना समझा तो किसी ने जानवरों की हत्या से भी रोक दिया और किसी ने अहिंसा की सीमा को इतना बढ़ा दिया कि कीड़े मकोड़ों और ज़हरीले जानवरों को भी मारना पाप समझा।

अब अन्त में गाँधी जी ने जो युद्ध अंग्रेज़ों के ख़िलाफ किया उसका आधार अहिंसा ही था। उन्होंने 'ताक़त को सत्य' के बजाए 'हक़ (सत्य) को ही एक शक्ति' माना और इसी सिद्धान्त को सामने रख कर इस प्रकार अपनी सेना को सत्य की ध्वजा के नींचे इकटठा किया कि अन्त में उनको सफलता प्राप्त हुई। और उन्होंने देश की स्वतंत्रता के सपने को हमारे सामने ला खड़ा किया, जो हमारी आँखों के सामने है। यहाँ तक कि उनकी इस सफलता से प्रभावित होकर अब तो कभी–कभी यूरोप वाले भी सत्य और उसकी शक्ति की चर्चा करने लगे हैं। गाँधी जी की अहिंसा की विचारधारा की सीमाएँ हमारे दृष्टिकोण से कुछ विभिन्न सही फिर भी जिस पर उनकी अहिंसा की नीव है, वह सिद्धान्त बहुत कुछ अहलेबैत (स0) (रसूल स0 के घराने वाले) के इस्लामी सिद्धान्त से मिलता जुलता है, जिस को बहुत खुले ढंग के प्रयोग में लाकर अनुभव की दुनिया में उसके फल का प्रदर्शन करके इमाम हुसैन (अ0) ने संसार को सत्य की शक्ति का बोध कराया था। फिर यह सिद्धान्तों की समता संयोगवश न थी बल्कि गाँधी जी ने खुले शब्दों में प्रायः इस बात को बताया कि उन्होंने कर्बला की घटना का अच्छी प्रकार अध्ययन किया था और उससे प्रभावित हुए थे। और उन्होंने प्रायः कहा कि स्वतंत्रता संग्राम में वह हुसैन (अ0) को अपना आदर्श जानते हैं। इसी लिये नमक सत्याग्रह में जाते समय उन्होंने अपने साथियों की संख्या बहत्तर रखते हुए यह बताया कि वह इस प्रकार हुसैन के नेतृत्व में रहने का सबूत पेश करना चाहते थे। ऐसी दशा में देश के स्वतंत्र होने के बाद केवल भारत ही से ऐसी आशा है कि वह कर्बला के शहीद की स्मृति को फलने–फूलने का अवसर दे। आज से पहले भी हमारे देश का झुकाव सदा हुसैन (अ0) के मातम की ओर रहा है। ग्वालियर का मुहर्रम इस बात को सिद्ध करने के लिये एक ऐतिहासिक सबूत है। हिन्दुओं का हुसैन (अ0) के शोक मनाने में भाग लेना इस वजह से न था कि मुसलमान इस देश में विजयी के रूप में आए और राजा के धर्म का प्रभाव प्रजा पर बहुत पड़ता है। यदि ऐसा होता तो फिर मुसलमानों में प्रचलित त्योहार जैसे ईद, बक़रीद या क़व्वाली आदि से इस देश के निवासियों ने कोई सम्बन्ध क्यों नहीं स्थापित किया। इसलिए कहना पड़ेगा कि जहाँ तक रीति रिवाज का सम्बन्ध है हिन्दू मुसलमानों से प्रभावित नहीं हुए बल्कि मुसलमान ही हिन्दुओं से प्रभावित हुए। शादी विवाह, मरनी करनी को देख लीजिये कि कौन प्रभावित है। फिर हुसैन का

ग़म मनाना ज़ाहिर है कि जो मुसलमानों की जाति विजयी के रूप में भारत में राज्य करने को आई उसने इमाम हुसैन (अ0) के मातम को चलन देने का कोई प्रयास न किया वह बहुधा इससे कोई मुख्य लगाव नहीं रखती थी। ऐसी हालत में इस देश और हिन्दु और हिन्दु समाज में हुसैन (अ0) की याद को बनाये रखने में किसी दबाव या ताक़त से काम नहीं लिया गया, बल्कि देश का स्वभाव उससे अनुकूल था। और यहाँ के प्राचीन सिद्धान्तों ने हुसैन (अ0) को हिन्दुओं में इतना प्रिय बना दिया। इतिहास से पता चलता है कि भारत वर्ष के वह राज्य जो मुसलमानों की आधीन न थे और जो मुसलमानों के शत्रु थे, वहाँ भी प्रेम और श्रद्धा से हुसैन का शोक मनाया जाता था। यह और बात है कि देश में कुछ ऐसे लोग पैदा हो गये जो अपने प्यारे नेता गाँधी जी को भी गोली से उड़ाने में कोई बुराई नहीं समझे, वे यदि इमाम हुसैन (अ0) की स्मृति को मिटाने का प्रयास करें तो कोई अचम्भे की बात नहीं है। परन्तु देश के स्वस्थ वातावरण जिसमें हुसैन (अ0) के मातम का चलन हुआ वह कभी भी हुसैन (अ0) की याद को भारत से मिटाने के प्रयास को सफल न होने देगा।

अब उन बयानों को देखिये जो हमारे देश के ख़ास–ख़ास नेताओं ने दिए। यादगारे हुसैनी सन् 1361 हि0 (इमाम हुसैन अ0 की शहादत होने के 1300 हिजरी साल पूरे होने की याद) के लखनऊ के जलसे के अवसर पर देश के प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था:–

''इस अवसर पर हम अपने मतभेद भूल गये, हमारी दलीलों का मुँह बन्द हो गया और हम सब एक हो गये, हम में आपस में मित्रता स्थापित हो गई क्योंकि एक बड़े वयक्तित्त्व या एक महान कार्य की स्मृति पूरे संसार को एक लड़ी में बाँध देती है और भूतकाल की धुंधली याद भी चौंका देने के लिये काफी है।

आज जब कि हम बड़ी–बड़ी घटनाओं के बीच और संसार के बदलाव की चौखट पर खड़े हैं हमारे लिये यह उचित है कि हम इतिहास के मुख्य घटनाओं की ओर आकर्षित हों और भूतकाल के महान् कार्यों से शक्ति प्राप्त करें।''

ज़ाहिर है कि वे घटनाएँ और समय के बदलाव आज से दस साल पहले सम्भवतः कुछ और हों किन्तु निस्सन्देह आज भी हम उन बड़ी घटनाओं के बीच और इन्क़लाब की चौखट पर उसी प्रकार खड़े हैं जिस प्रकार आज से पहले खड़े थे बल्कि ज़िम्मेवारी के बढ़ जाने के कारण उन घटनाओं का महत्त्व और भी अधिक हो गया है। इसलिये सच्चे दिल ऐसे महान कार्य की स्मृति जो आपस के मतभेद को मिटा सके और विश्व को एक मित्रता के बन्धन में बाँध सके जितनी आवश्यक इस समय है उतनी आवश्यक शायद उस समय न रही हो जब पंडित जी ने अपने मुँह से यह शब्द निकाले थे।

एक दूसरे संदेश में जो पंडित जी ने हुसैन डे कमेटी, बम्बई (मुम्बई) को भेजा था, उसमें लिखा है: ''इस शहादत में एक ऐसा संदेश है जो समस्त संसार के लिए है। हज़रत हुसैन (अलैहिस्सलाम) ने अपना सब कुछ बलिदान कर

दिया किन्तु एक अन्यायी तथा निर्दयी राज्य के आगे सर न झुकाया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि देखने में हमारी शक्ति शत्रु के मुक़ाबले में कम है। इमाम की शक्ति उनके नज़दीक सबसे बड़ी शक्ति थी जो हर अनात्मवाद शक्ति को तुच्छ जानती है। हर जाति हर सम्प्रदाय के लिए वह बलिदान पथ–प्रदर्शन के लिए दीपक का काम करती है।''

अब यह संदेश जिसे पंडित जी ने विश्व व्यापी बताया है, क्या भारत के लिए उसी समय तक आवश्यक था जब तक देश गुलाम था? क्या ज़ालिम के सामने सर न झुकाने की माँग किसी मुख्य वातावरण के अधीन है? वास्तव में, एक शासक के लिए आवश्यक है कि वह एक ज़ालिम के सामने सर झुकाने से बचे, जिस प्रकार राज्यसिंहासन पर बैठे हुए किसी यज़ीद के हाथ में हाथ देने से इन्कार ज़रूरी है, उसी प्रकार गोडसे जैसे लोगों से भी सरकार को न डरने की बड़ी आवश्यकता है।

हमारे स्वतंत्र देश की सरकार से इस समय उसके मित्रों और हमदर्दों को भी ज़ालिम होने की उतनी शिकायत नहीं है, जितनी ज़ालिमों और अत्याचारियों के अत्याचार को छिपाने की है। आक्षय ब्रह्मचारी का मरण ब्रत इसी जुल्म (ज़्यादती) के ख़िलाफ आग्रह का एक प्रदर्शन है। हम जानते हैं कि देश इन अत्याचारियों और हिंसकों को छोड़ देने का कारण उनकी अधिक्ता या उनकी ताक़त से प्रभावित होना ही है किन्तु यदि ईमान अर्थात सत्य को सत्य समझने की शक्ति पर कुछ भी भरोसा किया जाए तो कभी भी ज़ालिम अपनी मनमानी करने की हिम्मत नहीं कर सकता।

आधुनिक भारत में यह घोषणा खुलेआम होने की आवश्यकता है कि ''हर जाति और हर सम्प्रदाय के लिए यह बलिदान पथ–प्रदर्शन में दीपक की हैसियत रखती है।'' भारत की जनता 'ग़ैर मज़हबी' (सेकुलर) होने के बाद भी 'हर जाति और हर सम्प्रदाय' के दायरे से बाहर नहीं हो सकती इसलिए हुसैन (अ0) की कुर्बानी की यादगार इस स्वतंत्र भारतसे उसी प्रकार मनाए जाने की माँग कर सकती है जिस प्रकार एक ऐसे देश से कर सकती है जो अपने को एक जाति और एक सम्प्रदाय का समझता हो।

हमारे देश के गणतंत्र राज्य के राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने कहा है कि ''कर्बला की शहादत की घटना मानव इतिहास की वह घटना है जो कभी भुलाई नहीं जा सकती और जो संसार के करोड़ों मर्दों और औरतों के जीवन को प्रभावित करती रहेगी। भारत में इस घटना की स्मृति बड़े पैमाने पर मनाई जाती है जिसमें न केवल मुसलमान भाग लेते हैं बल्कि वे भी जो मुसलमान नहीं हैं बराबर अपनी रुचि का सबूत देते हैं और इसमें भाग लेते हैं।''

यह खुली हुई बात है कि किसी चीज़ के बारे में वास्तविक्ताएँ वातावरण के बदलने से बदला नहीं करतीं। ''कभी भुलाया नहीं जा सकता'', में कभी का शब्द अगर अपने पूरे अर्थ सहित प्रयोग में आया हो तो इसमें तब और अब का अन्तर होना असम्भव सी बात है। करोड़ों मर्दों और औरतों की संख्या यदि किसी धर्म की जनसंख्या

से सम्बन्धित हो तो बात के अन्त में ग़ैर मुस्लिम लोगों की समान दिलचस्पी'' ने एक धर्म की विशेषता को बाक़ी नहीं रखा। इसलिये देश में चाहे कोई भी सरकार स्थापित हो किन्तु वह हुसैन(अ0) की इस स्मृति को साम्प्रदायिक मानकर उससे आँख बचाने और अलग रहने का अधिकार प्राप्त नहीं कर सकती।

अन्त में हम बाबू श्री पुरुषोत्तम दास टंडन के शब्दों की ओर आप की ध्यान–दृष्टि को आकर्षित करना चाहते हैं। चूँकि आपके व्यक्तित्त्व को देश सेवा में काफी महत्त्व प्राप्त है, इसलिए आप के शब्दों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। आपके विचारों को नहरू जी के विचारों के विरूद्ध माना जाता है। आपको हिन्दू संस्कृति का पुजारी होने के कारण साम्प्रदायिक विचारों का माना जाता है इसलिए आप के विचार जो कर्बला के शहीद हज़रत इमाम हुसैन (अ0) के बारे में हैं वह समझने तथा देखने योग्य हैं।

आपने लखनऊ की हुसैन डे कमेटी को निम्नलिखित संदेश भेजा था:

''शहादते हुसैनी मेरे लिए सदा एक दुःखद आकर्षणशक्ति अपने अन्दर रखती थी, उस समय जब मैं एक छोटा बालक था। मैं उस महान ऐतिहासिक घटना की याद मनाने के महत्त्व को समझता हूँ। इतने महान बलिदानों से जो कि इमाम हुसैन (अ0) ने प्रस्तुत किए हैं उन्होंने मानवता के स्तर को बहुत ऊँचा कर दिया है। और उनकी स्मृति मनाने और क़ायम (स्थापित) करने के योग्य है।''

टंडन जी के शब्दों में यदि कोई महत्त्व और वास्तविकता है तो केवल उनकी इस स्कीम के होते हुए भी किसी देश में एक ही संस्कृति होनी चाहिए शहादते हुसैन की यादगार को इस उभयनिष्ठ संस्कृति का एक आवश्यक अंग होना चाहिए जिसमें आप पूरे देश को रंगना चाहते हैं। इसलिए कि वह समस्त मानवता को ऊँचा उठाने वाली है और बिना किसी मतभेद के मनाने और स्थापित करने के योग्य है।

टंडन जी का यह कहना है कि हमारे देश की प्राचीन रीतियों और रवाजों तथा सभ्यता को फिर से ज़िन्दा करना चाहिए इस बात का निमंत्रण देता है कि हुसैनी यादगार इस देश में स्थापित रहना चाहिए इसलिए कि इस मुल्क की पुरानी प्रथा है कि निर्दयी तथा हिंसक से घृणा और दुखी के साथ हमदर्दी सहानुभूति।

इन्हीं प्राचीन परम्पराओं का फल यह था कि जिन्हें अरब की भूमि पर शरण न मिलती थी वे भी हिन्दुस्तान आ कर शरण लेने का मन रखते थे। इसलिए इन्हीं पुरानी प्रथाओं के आधार पर कर्बला के शहीद की यादगार का इस देश में स्थापित रखना कांग्रेस सरकार का या जो भी देश की सरकार हो, उसका दायित्व है।

□□□

हुसैन (अ०) की शहादत की मुख़्तसर कहानी

सर जार्ज टामस चीफ़ जस्टिस अवध

हज़रत अली (अ0) पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (स0) के दामाद थे। मुझे यह बात कुछ बेकार सी मालूम होती है कि मैं यहाँ उन कड़वे तअल्लुक़ात को बयान करूँ जो हज़रत अली (अ0) के ख़ानदान और बनी उमैय्या के हुकमरान ख़ानदान के दरमियान मौजूद थे क्योंकि उनसे आप हज़रात अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं लेकिन जिस अज़ीम वाक़ेए की याद मनाने के लिए आज आप जमा हुए हैं उसके लिए बहरहाल उन वाक़ेआत और असरात की तरफ इशारा करना मुनासिब मालूम होता है जिनके नतीजे में इमाम हुसैन ने इतनी बड़ी कुर्बानी और हक़ व सदाक़त से बेनज़ीर वाबस्तगी की मिसाल पेश की।

हज़रत अली अलैहिस्सलाम कूफ़े की मस्जिद में ऐसी हालत में शहीद किये गये जब वह अपने ख़ालिक़ की बन्दगी में लगे हुए थे। उनके बड़े बेटे हज़रत इमाम हसन (अ0) जो उनकी जगह तख़्ते ख़िलाफत पर बैठे वह एक सुलह पसन्द और इज़्ज़त पसन्द इन्सान थे कुछ महीनों की ख़ाना नशीनी और ख़िलाफत के बाद उन्हें ज़हर से हलाक कर दिया गया। इसके बाद मुआविया ने जो ख़ानदाने बनी उमैय्या के नुमाइन्दे थे हुकूमत मक्का की ख़्वाहिश पूरी की और ख़लीफा बन गये मुआविया पहले शाम के गवर्नर थे लेकिन बाद को हिजाज़ और इराक़ के भी हुक्मरान हो गये थे।

मुआविया की वफात के बाद उनका बेटा यज़ीद उनकी जगह उस सुलहनामे की शर्तों के ख़िलाफ ख़लीफा बन बैठा जो मुआविया और हज़रत इमाम हसन (अ0) के दरमियान हुआ था और जिसके हिसाब से मन्सबे ख़िलाफत हज़रत इमाम हुसैन (अ0) के लिए महफूज़ कर दिया गया था। यज़ीद जाबिर और ज़ालिम हुकमरान था। वह अपने लिए इमाम हुसैन (अ0) की बैअत हासिल करना चाहता था लेकिन इन्तिहाई कोशिशों के बावजूद अपना मक़सद हासिल न कर सका। इसको सब मानते हैं कि इमाम हुसैन (अ0) हक़, इन्साफ और सच्चाई के ज़बरदस्त हामी थे। उन्होंने यज़ीद की हक़दारी को किसी हालत में भी क़बूल करना पसन्द न किया।

इराक़ में कूफी मुसलमानों ने जो यज़ीद की बदइन्तिज़ामी और बेइन्तिहा मज़ालिम से आजिज़ आ चुके थे इमाम हुसैन से यज़ीद के चंगुल से रिहाई पाने के लिए मदद चाही, इमाम हुसैन (अ0) ने जो फितरतन बहादर और हिम्मत वाले थे ख़ौफ और नतीजों से बेपरवाह होकर मुसलमानो को यज़ीद की ज़ालिमाना हुकूमत से नजात दिलाने का पक्का इरादा कर लिया। उन्होंने अपने घर की औरतों और बच्चों और अपने वफ़ादार साथियों के साथ अरब के सुन्सान और झुलसते हुए रेगिस्तान का सफ़र तय किया और कर्बला में जो कूफ़ा से 33 मील के फ़ासले पर है फ़ुरात नदी के पश्चिमी किनारे के क़रीब अपना ख़ेमा लगाया वह कर्बला में 2 मुहर्रम 61 हि0 यानी आज से तेरह सौ बरस पहले पहुँचे थे।

यज़ीद ने एक बड़ी फ़ौज जो कई हज़ार सिपाहियों की थी एक संगदिल कमाण्डर की सरदारी में इमाम हुसैन (अ0) और उनके साथियों को शहीद करने के लिए भेजी। इमाम हुसैन (अ0) से बैअत लेने की कई तरह से कोशिश की गई लेकिन उन्होंने उन तमाम बातों को बहुत हिक़ारत के साथ ठुकरा दिया और तमाम मुसीबतों और ज़िल्लतों का डटकर मुक़ाबला करने के लिए तैयार हो गये। हालांकि उन्हें इसका इल्म था कि वह ला तादाद मुसीबतों में घिरे हुए हैं सिर्फ यही नहीं बल्कि उन्होंने अपने साथियों को इस बात की भी इजाज़त दे दी कि वह अगर बेरहम दुश्मनों के हाथों लाई हुई मौत और तबाही से बचना चाहते हैं तो निहायत ख़ुशी से उनको छोड़कर वापस जा सकते हैं। इमाम हुसैन (अ0) के लिए मदद के तमाम रास्ते बन्द कर दिये गये उनको और उनके साथियों को 7 मुहर्रम से 10 मुहर्रम तक भूखा प्यासा रहना पड़ा। यहाँ तक कि उन्हें बराबर तीन दिन रात एक क़तरा पानी भी अपने सूखे हुए हलक़ तर करने के लिये न मिला। इन तमाम रुकावटों और तकलीफ़ों के बाद भी उन्होंने यज़ीदी फौज का मुक़ाबला किया और देखने में हार गये। इमाम हुसैन (अ0) के साथी एक–एक करके मर्दानावार लड़ते रहे और आख़िरेकार इस कमज़ोरी और लाचारी की वजह से जो भूख और प्यास की वजह से पैदा हो गई थी शहीद होते रहे, इमाम हुसैन (अ0) के ख़ेमे में आग लगा दी गई और उनके अहले हरम को मजबूरन पनाह लेने के लिए ख़ेमा छोड़कर मुक़ाबलतन ज़्यादा महफ़ूज़ मक़ामात को तलाश करना पड़ा। हक़ और सदाक़त को बचाने की कोशिश में उनके बहत्तर साथी जिनमें उनके बच्चे, अज़ीज़ और वफ़ादार साथी शामिल थे शहीद कर दिये गये यहाँ तक कि 6 माह का बच्चा भी मार डाला गया और अकेले इमाम हुसैन (अ0) बाक़ी रह गये, जिन्होंने बहुत ही बहादरी के साथ अपनी जान हक़ और सदाक़त की राह में क़ुर्बान कर दी। उनका सर काट लिया गया और उसको नेज़े की नोक पर बुलन्द करके यज़ीद के दरबार में तोहफ़े के तौर पर भेज दिया गया।

इतिहासकार गबन लिखता हैः ''इमाम हुसैन की शहादत का दर्दनाक मन्ज़र दूर दराज़ ज़माने में भी एक इन्तिहाई सर्द मुहर इन्सान तक का दिल हिला देगा और हमदर्दी का जज़्बा पैदा कर देगा।''

हज़रात! यह है इमाम हुसैन की 57 साल की उम्र में शहादत की मुख़्तसर कहानी। कौन है जो इमाम हुसैन (अ0) की हक़ और सदाक़त को बुलन्द करने वाली इस लड़ाई की बेलाग तारीफ़ किये बग़ैर रह सके? दूसरे के लिए जीने का उसूल और कमज़ोरों और दुखियारों की मदद अपनी ज़िन्दगी का मक़सद बनाने की बेनज़ीर मिसाल इमाम हुसैन (अ0) की बेलौस शख़्सियत से ज़्यादा रौशन कहीं और नहीं मिल सकती जिन्होंने अपनी और अपने महबूब तरीन अज़ीज़ों और साथियों की जान की बाज़ी लगा दी लेकिन एक ज़ालिम और ताक़तवर बादशाह के सामने सर झुकाने से इनकार कर दिया गो कि हक़ और सदाक़त की बेबहा ख़ूबियों की हिफ़ाज़त और दूसरों की भलाई के लिए इमाम हुसैन (अ0) ने आज से तेरह सौ बरस पहले अपनी जान दी थी लेकिन फिर भी उनकी न ख़त्म होने वाली रूह आज भी दुनिया में लातादाद इन्सानों के दिलों पर हुकमरानी कर रही है। और उनकी शहादत की पाकीज़ा यादगार हर साल मुहर्रम के महीने में ताज़ा की जाती है। □□□

(मुहर्रम 1378 हि0)

इदारा

मुख्य समाचार

इमामबाड़ा गुफ़रानमॉब लखनऊ में दो रोज़ा आल इण्डिया मजलिसे उलमा व ख़ुतबा कान्फ्रेंस

बतारीख़ 25 व 26 नवम्बर 2007 ई0 को लखनऊ के मरकज़ी इमामबाड़ा गुफ़रानमॉब में दो दिवसीय अज़ीमुश्शान उलमा व खुतबा कान्फ्रेंस हुई जिसमें पूरे मुल्क से उलमा व ख़ुतबा तशरीफ लाए और अपने–अपने सूबे और ज़िले की नुमाइन्दगी फरमाई। कान्फ्रेंस का आग़ाज़ तिलावते कलाम पाक से हुआ और निज़ामत के फराएज़ राष्ट्रीय सहारा के सीनियर सहाफी जनाब शकील शम्सी साहब ने अन्जाम दिये। कान्फ्रेंस की सदारत आली जनाब मन्ज़ूर मोहसिन साहब साबिक़ हेड ऑफ दि डिपार्टमेण्ट शिया दीनियात ए0एम0यू0 ने की। महमाने खुसूसी में प्रोफेसर महदी हसन कारगिल और मौलाना सै0 अज़हर हुसैन आबदी साहब इमामे जुमा कर्नाटक के नाम क़ाबिले ज़िक्र हैं।

दो रोज़ा कान्फ्रेंस छः सेशनों में हुई जिनमें मुख़्तलिफ सद्र हुए जैसे मौलाना हुसैन महदी हुसैनी साहब क़िब्ला मुम्बई, अल्लामा सुहैल आफन्दी साहब क़िब्ला हैदराबाद, मौलाना महमूदुल हसन साहब क़िब्ला जौनपुर, जनाब आग़ा सुलतान साहब बंगलौर और जनाब डाक्टर रज़ा हुसैन साहब लखनऊ। इसी तरह मेहमाने खुसूसी भी मुख़्तलिफ लोग हुए जैसे जनाब गुलाम अली गुलज़ार कश्मीर, मौलाना समीउल हसन वसीम देहली, मौलाना तहक़ीक़ हुसैन भावनगर गुजरात, मौलाना मुहम्मद हुसैन ज़ाकरी करगिल, मौलाना अतहर अब्बास साहब कलकत्ता आदि।

इस कान्फ्रेंस में मुख़्तलिफ ज़ावियों से मज़हबी, समाजी, क़ौमी और इक़्तेसादी मसाएल को हल करने के लिए खुले मुबाहसे हुए। हिन्दुस्तान में पहली बार उलमा व ख़ुतबा का इतना अज़ीम मजमा एक जगह पर नज़र आया जो इस बात का सुबूत है कि अब हमारे उलमा और ख़ुतबा में इत्तेहाद क़ायम हो चुका है इन्शाअल्लाह वह दिन दूर नहीं जब हमारे तमाम मसाएल का मुस्बत हल हो जाएगा। इस कान्फ्रेंस में तमाम उलमा व खुतबा ने अपनी–अपनी तक़रीरों में क़ायदे मिल्लत मौलाना सै0 कल्बे जवाद नक़वी साहब की तमाम तहरीकों को तकमील तक पहुँचाने का पक्का इरादा ज़ाहिर किया। तमाम उलमा व खुतबा ने ख़ासकर मौलाना महमूदुल हसन ख़ान साहब जौनपुर, मौलाना अतहर अब्बास साहब कलकत्ता, मौलाना सै0 क़ासिम रिज़ा साहब बंगाल, मौलाना अली अकबर साहब मदरास, मौलाना तहक़ीक़ हुसैन साहब गुजरात, मौलाना वसी हसन खाँ साहब फैज़ाबाद, मौलाना मुहम्मद हुज्जत साहब फैज़ाबाद, मौलाना मुहम्मद हुसैन ज़ाकरी, मौलाना हुसैन महदी हुसैनी, मौलाना मोहसिन तक़वी, मौलाना जलाल हैदर नक़वी, मौलाना जवाद हैदर इलाहाबाद और दूसरे उलमा व ख़ुतबा ने नीचे दिये गये उनवानों पर तक़रीरें फरमाईः (1) उलमा व ख़ुतबा की दीनी व समाजी ज़िम्मेदारी (2) क़ौम को पेश आने वाले मसाएल (3) इल्मी गिरावटें और उनका हल (4) तालीमी मुश्किलें और और उनकी वजह (5) कुम, शाम और नजफ के तलबा की डिग्री को हिन्दुस्तानी युनिवर्सिटियों से मन्ज़ूरी की कोशिश (6) तसलीमा नसरीन, सच्चर कमेटी और श्री कृष्णा कमीशन की क़रारदादों पर बातचीत (7) क़ौम के निजी मिलकियत के कारोबारी इदारों का क़याम (8) क़ौम के बेरोज़गार हुनरमन्दों का सही इस्तेमाल वग़ैरा।

कान्फ्रेंस के दूसरे दिन के जल्सों में भी क़ौमी और समाजी मसाएल को हल करने के लिए खुलकर मुबाहसे हुए और शिया यतीम ख़ाना लखनऊ की वेबसाइट और नूरे हिदायत फाउण्डेशन इमामबाड़ा गुफ़रानमॉब से छपने वाली किताबों जैसे 'इन्साने आज़म' (अल्लाम हिन्दी), अमीरे मुख़्तार (मौलाना हसन ज़फ़र, कराची की तक़रीरों का मजमूआ), ख़ानदाने इज्तेहाद के आलिमों और फ़क़ीहों का तज़किरा, शुमारा–9 और डाक्टर रज़ा हुसैन साहब की तालीफ़ 'मुहकम आयात' का इफ़्तेताह भी क़ायदे मिल्लत मौलाना कल्बे जवाद साहब क़िब्ला और मौलाना महमूदुल हसन साहब क़िब्ला के हाथों से हुआ।

दो रोज़ा इजलास के आख़िर में मजलिसे उलमा व खुतबा की मजलिसे आमला के लिए हर सूबे से नुमाइन्दों को चुना गया और आल इण्डिया मजलिसे उलमा व ख़ुतबा के मरकज़ी ओहदेदारों में मौलाना महमूदुल हसन ख़ान साहब, मौलाना सुहैल आफ़न्दी साहब और डाक्टर मौलाना सै0 कल्बे सादिक़ साहब क़िब्ला को सरपरस्त मुन्तख़ब किया गया। इसके अलावा सदर के ओहदे पर मोलाना सै0 अली तक़वी देहली को, जनरल सिक्रेट्री क़ायदे मिल्लत मौलाना सै0 कल्बे जवाद नक़वी साहब को और नायब सदर के तौर पर मौलाना हुसैन महदी हुसैनी साहब का चयन हुआ।

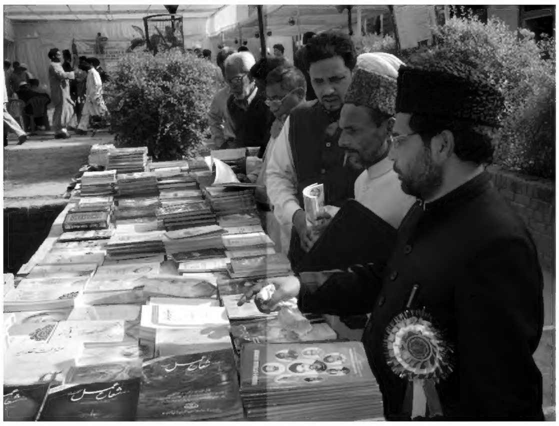

उलमा व ख़ुतबा कान्फ्रेन्स 25–26 नवम्बर 2007 ई0 के कुछ दृश्य